सस्ती ग्रन्थ-माला का सोलहवां पुष्प

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

समयसार

भाषा टीकाकार—

स्व० पं० जयचन्द्र जी जयपुर

[स्व० पं० मनोहरलाल जी शास्त्री द्वारा आधुनिक भाषामें परिवर्तित]

प्रकाशक—

सस्ती ग्रन्थमाला

७।२३ दरयागंज, देहली।

प्रथमावृत्ति २०००

आश्विन वीर सं० २४७६
वि० सं० २००७।

मूल्य सवा १।) रु०

ॐ कार पाठ

—o—

ॐ कारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐ काराय नमो नमः ॥१॥
अविरलशब्दघनौघा, प्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्थो, सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥२॥
अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥३॥

श्री परमगुरवे नमः परंपराचार्यश्रीगुरुभ्यो नमः । सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म-सम्बन्धकं भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री समयसार नामधेयं । अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य श्री कुन्दकुन्दाचार्येण विरचितम् ।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गलं भगवान्वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोऽस्तुमङ्गलम् ॥४॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥५॥

वक्तव्य ।

इस युगमें श्री कुन्दकुन्द आचार्य एक महान असाधारण ऋषि हुए हैं इन्होंने अपनी पवित्र तपस्याके बलपर अगम्य विदेह क्षेत्र में पहुँचकर श्री १००८ तीर्थङ्कर सीमन्धर स्वामी के साक्षात् दर्शन किये थे। कलिकाल में अलभ्य श्रीतीर्थङ्कर के साक्षात्कार से श्री कुन्दकुन्दाचार्य की वाणीमें जो अतिशय आया उसका प्रतीक 'समयसार' ग्रन्थ है। समयसार अपनी उपमा आप ही रखता है। इस ग्रन्थने कितने भद्र भव्य प्राणियोंका हित सम्पादन किया होगा इसका अनुमान वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जिन्होंने समयसार का स्वाध्याय किया है।

मुलतान में सेठ भोलाराम जी बगवानी तथा ला० चौथराम जी संघी बहुत कट्टर श्वेताम्बर आम्नायी थे वे इतने कट्टर थे कि दिगम्बर जैन आम्नाय का बहुत उपहास किया करते थे, दिगम्बर जैन मन्दिर का देखकर थूककर घृणा प्रगट किया करते थे अकस्मात् एक श्वे०यति जो से इनको 'समयसार' ग्रन्थ मिल गया उसके स्वाध्यायसे इनके हृदयकपाट खुल गये और बिना किसी प्रेरणाके स्वयं श्रीकुन्दकुन्दाचार्य के कट्टर भक्त बन गये। जो महानुभाव उनसे परिचित हैं वे उनकी धार्मिकता को अच्छी तरह जानते हैं।

पूज्य श्री कान जी ऋषिने इसी 'समयसार' के स्वाध्याय पर काठियावाड़ में जो युगपरिवर्तन कर दिया है वह सर्वविदित है।

समयसार आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें शिरोमणि है।

इसके रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम सं० की पहली शताब्दीमें हुए हैं। श्री प० चक्रवर्ती ने अनेक प्रमाणों से उनका यही समय निर्द्धारित किया है। वे वि० सं० ४९ में आचार्य पद

पर आसीन हुए थे। उन्होंने समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ आदि अनेक ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषामें की है। वे मूलसंघके प्रवर्तक थे। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में श्री कुन्दकुन्दाचार्य को सर्वोच्च ऋषि माना जाता है। मङ्गलकारों में उनका पवित्र नाम बड़ी भक्तिसे लिया जाता है।

समयसार ग्रन्थपर श्री अमृतचन्द्र सूरि तथा श्री जयसेनाचार्यकृत दो संस्कृत टीकाएं उपलब्ध हैं और श्री अमृतचन्द्र सूरि कृत नाटक समयसारकलश (संस्कृत श्लोकबद्ध) के अनुसार १७ वीं शताब्दीमें श्री पं० बनारसीदास जी ने भाषाछन्दोबद्ध नाटक समयसार बनाया है। प्रसिद्ध पं० रूपचन्द जी पांडे ने उस पर भाषा-टीका की है। उसी पर दूसरी टीका पं० बुद्धिलालजी ने की है।

मूल समयसार की भाषाटीका जयपुर निवासी पं० जयचन्द्र जी ने की थी उसी ढूंढारी भाषा-टीका को पाढमनिवासी पं० मनोहरलाल जी शास्त्री ने आधुनिक हिन्दी भाषा में परिवर्तित किया था। उसी टीका के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है श्री कान जी ऋषि ने भी समयसारकी अच्छी विस्तृत टीका की है जो कि हिन्दी तथा गुजराती भाषामें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ ही पं० बनारसीदास जी कृत 'नाटक समयसार' भी है। प्रचार की दृष्टि से सस्ती ग्रन्थ-माला ने अपने नियमानुसार दोनों ग्रन्थों का लागत मूल्य ही रक्खा है। जनता को इससे लाभ उठाना चाहिये। आत्म-उत्थान में समयसार का स्वाध्याय अनुपम सहायक है।

—अजितकुमार जैन शास्त्री

विषय—सूची ।



पृष्ठांक



सस्ती ग्रंथमाला के संरक्षक तथा सहायक



१ सेठ लालचन्द्र जी बीड़ीवाले सदर बाजार, देहली २०००)
२ ला० राजकृष्ण जी २३, दरियागंज देहली। १०००)
३ माताजी ला० अजितप्रसादजी
कटरा खुशहालराय, देहली। १०००)
४ ला० त्रिलोकचन्द जी सदरबाजार, देहली। १०००)
५ ला० विश्वम्भरदास अजितप्रसाद जी
सदर बाजार, देहली। १०००)
६ माता जी ला० शीतल प्रसादजी किचनररोड, देहली १०००)
७ ला० मुन्शीलाल सुमतिप्रसाद जी धर्मपुरा देहली। १०००)
१ ला० रतनलाल जी मादीपुरिया; देहली ५०१)
२ श्री० सुशीला देवी, ध० प० रा० ब० ला० सुलतानसिंह
जी देहली। ५००)
३ श्री गुणवती देवी, धर्म प० बा० पदम किशोर जी,
देहली। ५०१)
४ ला० पन्नालाल दुर्गाप्रसादजी, नयागंज, कानपुर ५०१)
५ ला० फिरोजालाल जी, ७ दरयागंज, देहली ३०३)
६ ला० मनोहरलालजी, इंजीनीयर, ७ दरयागंज देहली २५०)
७ ला० छुट्टनलालजी, मैदावाले, देहली। २५१)
८ ला० हुकमचन्दजी जैन पंच, धर्मपुरा देहली। २११)
९ रा० सा० ला० उल्फतराय जी ७।३३ दरयागंज, देहली २०१)
१० ला० हरिश्चन्द्र जी, २३ दरयागंज, देहली २०१)
११ धर्मपत्नी ला० बाबूराम जी, बिजली वाले देहली १५१)
१२ श्री कंवताबाई ध० प० ला० चन्दूलाल जी,
सहारनपुर १२५)

महामुनि श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

—:※※:—

समयपाहुड

(मंगलाचरण)

वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं ॥१॥

आचार्य कहते हैं, मैं कुन्दकुन्द ध्रुव अचल और अनुपम इन तीन विशेषणोंसे युक्त सिद्धको प्राप्त हुए ऐसे सब सिद्धोंको नमस्कार कर हे भव्यो, श्रुतकेवलियों द्वारा कहे हुए इस समयसार नामा प्राभृत को कहूंगा।

(स्व-समय पर-समयका लक्षण)

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ॥२॥

हे भव्य, जो जीव दर्शन ज्ञान चारित्रमें स्थित हो रहा है उसे निश्चयकर स्वसमय जान। और जो जीव पुद्गलकर्मके प्रदेशोंमें स्थित हो रहा है उसे परसमय जान।

(स्व-समयमें परसमय बाधक है)

एयत्तणिच्छयगओ समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥३॥

एकत्वनिश्चयमें प्राप्त जो समय है वह सब लोकमें सुन्दर-

है। इसलिये एकत्वमें दूसरेके साथ बंधकी कथा विसंवाद करानेवाली है।

(स्व-समयकी दुर्लभता)

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

सबही लोकोंको काम भोग विषयक बंधकी कथा तो सुननेमें आगई है, परिचयमें आगई है और अनुभवमें भी आई हुई है इसलिये सुलभ है। लेकिन केवल भिन्न आत्माके एकत्वकी प्राप्ति न कभी सुनी, न परिचयमें आई और न अनुभवमें आई इसलिये एक यही सुलभ नहीं है।

(अपनी लघुताका दर्शन)

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेतव्वं ॥५॥

उस एकत्व विभक्त शुद्ध आत्माको मैं आत्माके निज विभवसे दिखलाता हूं। यदि मैं ठीक दिखलाऊं तो उसे प्रमाण (स्वीकार) करना और यदि कहीं पर चूक जाऊं तो छल नहीं ग्रहण करना।

(शुद्ध आत्माका स्वरूप)

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥६॥

जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं है और न प्रमत्त

ही है। इस प्रकार उसे शुद्ध कहते हैं। और जो ज्ञायक भावसे जान लिया वह वही है अन्य कोई नहीं।

(व्यवहार नयसे आत्माका स्वरूप)

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं।
णवि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥७॥

ज्ञानीके चारित्र, दर्शन, ज्ञान—ये तीन भाव व्यवहारसे कहे जाते हैं। निश्चयसे ज्ञानभी नहीं है, चारित्रभी नहीं और दर्शनभी नहीं। ज्ञानी तो एक ज्ञायक ही है इसलिये शुद्ध कहा गया है।

(व्यवहारकी आवश्यकता)

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥८॥

जैसे म्लेच्छ जनोंको म्लेच्छ-भाषाके बिना तो कुछ भी वस्तुकास्वरूप ग्रहण कराने को कोई पुरुष नहीं समर्थ हो सकता, उसी प्रकार व्यवहारके विना परमार्थका उपदेश करना अशक्य है अर्थात् कोई नहीं कर सकता है।

(व्यवहारकी प्रतिपादकता)

जो हि सुएणहिगच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पईवयरा ॥९॥

जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुयकेवली तह्मा ॥१०॥

जो जीव निश्चयसे श्रुतज्ञानके द्वारा इस अनुभव-गोचर केवल एक शुद्ध, आत्माको अच्छी तरह जानता है उसे लोकके प्रगट जानने वाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते हैं।

जो जीव सब श्रुतज्ञानको जानता है उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं क्योंकि सब ज्ञान आत्मा ही है इस कारण आत्माको ही जाननेसे श्रुतकेवली कहा जासकता है।

(व्यवहार और निश्चयनय का स्वरूप)

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ (असत्यार्थ) है और शुद्धनय भूतार्थ (सत्यार्थ) है ऐसा ऋषीश्वरों ने उपदेश दिया है। जो जीव भूतार्थको आश्रित करता है वह जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है।

(व्यवहारनयकी उपयोगिता)

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥१२॥

जो शुद्धनय तक पहुंच श्रद्धावान हुए तथा पूर्णज्ञान चारित्रवान हो गये उनको तो शुद्धका उपदेश करने वाला शुद्धनय जानने योग्य है। यहां शुद्ध आत्माका प्रकरण है इसलिये शुद्ध नित्य एक ज्ञायक मात्र आत्मा जानना। और जो जीव अपरम भाव में स्थित हैं अर्थात् श्रद्धाके तथा ज्ञान चारित्रके पूर्ण भावको नहीं पहुंच सके, साधक अवस्थामें ही ठहरे हुए हैं वे व्यवहारनय द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

(सम्यक्त्वका स्वरूप)

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥१३॥

भूतार्थ नयसे जाने हुये जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, ये नव तत्त्व सम्यक्त्व हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १४॥

जो नय आत्माको बंधसे रहित, परके स्पर्श रहित, अन्यपनेसे रहित चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्यके संयोगसे रहित, ऐसे पांच भावरूप देखता है उसे हे शिष्य, तू शुद्धनय जान।

(शुद्धनयका स्वरूप)

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

जो पुरुष आत्माको अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष तथा उपलक्षण से नियत, असंयुक्त, इन स्वरूप देखता है वह सब जिनशासनको देखता है। वह जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत और अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुत वाला है।

(आत्मा रत्नत्रय स्वरूप है)

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१६॥

साधु पुरुषोंको दर्शन ज्ञान चारित्र निरंतर सेवन करने योग्य हैं। और वे तीन हैं तो भी निश्चयनयसे एक आत्मा ही जानो।

(उपर्युक्त कथनका दृष्टान्तद्वारा समर्थन)

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥१७॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥१८॥

जैसे कोई धनका चाहने वाला पुरुष राजाको जान कर श्रद्धान करता है उसके बाद उसकी अच्छी तरह सेवा करता है। इसी तरह मोक्षको चाहने वाला जीवरूप राजाको जाने और फिर उसी तरह श्रद्धान करे उसके बाद उसका अनुचरण करे अर्थात् अनुभव कर तन्मय होजाय।

(अज्ञानीका स्वरूप)

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥१९॥

जब तक इस आत्माके ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भावकर्म और शरीर आदि नोकर्ममें मैं कर्म नोकर्म हूं और ये कर्म नो कर्म मेरे हैं ऐसी निश्चय बुद्धि है तब तक यह आत्मा अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) है।

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥२०॥

आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि।
होहिदि पुणोवि मज्भं अहमेदं चावि होस्सामि ॥२१॥

एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥२२॥

जो पुरुष अपनेमें अन्य जो परद्रव्य सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धन धान्यादिक, मिश्र ग्राम नगरादिक, इनको ऐसा समझे कि मैं यह हूं, ये द्रव्य मुझस्वरूप हैं, मैं इन का हूं, ये मेरे हैं, ये मेरे पहले थे, इनका मैं भी पहले था। तथा ये मेरे आगामी होंगे, मैं भी इन का आगामी होऊंगा, ऐसा झूठा आत्मविकल्प करता है वह मूढ है, मोही है, अज्ञानी है। और जो पुरुष परमार्थ वस्तु स्वरूपको जानता हुआ ऐसा झूठा विकल्प नहीं करता है वह मूढ नहीं है ज्ञानी है।

अण्णाणमोहिदमदी मज्भमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥२३॥

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
किह सो पुग्गलदव्वी-भूदो जं भणसि मज्भमिणं ॥२४॥

जदि सो पुग्गलदव्वी–भूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सत्तो वत्तुं जे मज्भमिणं पुग्गलं दव्वं ॥२५॥

जिसकी मति अज्ञानसे मोहित है ऐसा जीव इस तरह कहता है कि यह शरीरादि बद्ध द्रव्य, धनधान्यादि अबद्ध पर द्रव्य मेरा है। वह जीव मोह राग द्वेषादि बहुत भावोंसे सहित है॥ आचार्य कहते हैं जो जीव सर्वज्ञ के ज्ञानसे देखा गया नित्य उपयोग लक्षणवाला है वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो सकता है? जो तू कहता है कि यह पुद्गलद्रव्य मेरा है। जो जीव द्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय, तो पुद्गल द्रव्य भी जीवपने को प्राप्त हो जायगा। यदि ऐसा हो जाय तो तुम कह सकते हो कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। ऐसा नहीं है।

(अज्ञानकी शंकाका समाधान)

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव ।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥२६॥

(अप्रतिबुद्ध कहता है) कि जो जीव है वह शरीर नहीं है, तो तीर्थंकर और आचार्योंकी स्तुति करना है वह सबही मिथ्या (झूठ) हो जाय। इस लिये हम समझते हैं कि आत्मा यह देह ही है।

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥२७॥

व्यवहार नय तो ऐसा कहता है कि जीव और देह एक ही हैं और निश्चय नयका कहना है कि जीव और देह ये दोनों तो कभी एक पदार्थ नहीं हो सकते।

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी ।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥२८॥

जीवसे भिन्न इस पुद्गलमयी देहको स्तुति करके साधु असल में ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवानकी स्तुतिकी और वंदना की ।

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥२९॥

वह स्तवन निश्चयमें ठीक नहीं है, क्योंकि शरीरके गुण केवलीके नहीं । जो केवलीके गुणोंकी स्तुति करता है वही परमार्थसे केवलीकी स्तुति करता है ।

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥३०॥

जैसे नगरका वर्णन करने पर राजाका वर्णन नहीं किया होता उसी तरह देहके गुणोंका स्तवन होनेसे केवलीके गुण स्तवन रूप किये नहीं होते ।

(जितेन्द्रियका स्वरूप)

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥ ३१॥

जो इंद्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभावकर अन्य द्रव्यसे अधिक आत्माको जानता है । उसको नियमसे जो निश्चयनयमें स्थित साधु लोक हैं वे जितेन्द्रिय ऐसा कहते हैं ।

(जितमोहका स्वरूप)

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥३२॥

जो मुनि मोहको जीत कर अपने आत्माको ज्ञानस्वभाव कर अन्यद्रव्य भावोंसे अधिक जानता है उस मुनिको परमार्थ के जानने वाले जितमोह ऐसा जानते हैं कहते हैं।

(क्षीणमोहका स्वरूप)

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥३३॥

जिसने मोहको जीत लिया है ऐसे साधुके जिस समय मोह क्षीण हुआ सत्तामें से नाश होता है उस समय निश्चयके जानने वाले निश्चय कर उस साधुको क्षीणमोह ऐसे नामसे कहते हैं।

(निश्चय नयसे प्रत्याख्यानका स्वरूप)

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं ॥३४॥

जिस कारण अपने सिवाय सभी पदार्थ पर हैं ऐसा जानकर त्यागता है इस कारण पर हैं, यह जानना ही प्रत्याख्यान है यह नियमसे जानना। अपने ज्ञानमें त्याग रूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है दूसरा कुछ नहीं है।

(उक्त कथनका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टकरण)

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी ॥ ३५॥

जैसे लोकमें कोई पुरुष परवस्तुको ऐसा जानता है कि यह परवस्तु है तब ऐसा जान परवस्तुको त्यागता है, उसी तरह ज्ञानी सब परद्रव्योंके भावोंको ये परभाव हैं ऐसा जानकर उनको छोड़ता है ।

(निर्मोही का स्वरूप)

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३६॥

जो ऐसा जानें कि मोह मेरा कोई भी संबंधी नहीं, एक उपयोग है वही मैं हूं। ऐसे जाननेको सिद्धांतके अथवा आपापर स्वरूपके जानने वाले मोहमें निममत्वपना समझते हैं, कहते हैं ।

(ज्ञेयभाव विवेकका प्रतिपादन)

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३७॥

ऐसा जाने कि ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं लगते, मैं ऐसा जानता हूँ कि एक उपयोग है वही मैं हूं। ऐसा जानने को सिद्धांत वा स्वपर समयरूप समयके जानने वाले धर्म द्रव्य से निर्ममत्वपना कहते हैं ।

(निश्चयनयसे आत्मा का स्वरूप)

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थिमज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥३८॥

(जो दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणत हुआ, आत्मा वह ऐसा जानता है कि) मैं एक हूं, शुद्ध हूं, निश्चय कर सदा काल अरूपी हूँ । अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा कुछ नहीं लगता है यह निश्चय है ।



(जीवाजीव अधिकार में पूर्वरंग समाप्त)

जीवाजीव अधिकार

(अज्ञानियों द्वारा आत्मस्वरूपकी विविध कल्पना)

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई ।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति ॥३९॥

अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभावगं जीवं ।
मएणंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति ॥४०॥

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभायमिच्छंति ।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥४१॥

जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति ।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥४२॥

एवं विहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा ।
ते ण परमट्ठवाइहि णिच्छयवाईहिं णिद्दिट्ठा ॥४३॥

जो आत्माको नहीं जानते हुए परको आत्मा कहने वाले कोई मोही अज्ञानी तो अध्यवसानको और कोई कर्मको जीव कहते हैं । अन्य कोई अध्यवसानों में अनुभागगत तीव्र मंदताको जीव मानते हैं और अन्य कोई नोकर्म को जीव मानते हैं, अन्य

कोई कर्मके उदयको जीव मानते हैं, कोई कर्मके अनुभागको जो अनुभाग तीव्र मंद पनें रूप गुणोंकर भेदको प्राप्त होता है, वह जीव है ऐसा इष्ट कहते हैं। कोई जीव और कर्म दोनों मिले हुए को ही जीव मानते हैं और अन्य कोई कर्मोंके संयोग कर ही जीव मानते हैं। इस प्रकार तथा अन्य भी बहुत प्रकार दुर्बुद्धी मिथ्या दृष्टि परको आत्मा कहते हैं। वे परमार्थ कहने वाले नहीं हैं ऐसा निश्चयवादियोंने कहा है।

(अध्यवसान आदि जीव नहीं हैं)

एए सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा ।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वच्चंति ॥४४॥

ये पूर्व कहे हुए अध्यवसान आदिक भाव हैं वे सभी पुद्गल द्रव्यके परिणमनसे उत्पन्न हुए हैं ऐसा केवली सर्वज्ञ जिनदेव-ने कहा है, उनको जीव ऐसा कैसे कह सकते हैं ? नहीं कह सकते।

(कर्म पुद्गल स्वरूप हैं और उनका फल दुःख है)

अट्ठविहं पिय कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणाविंति ।
जस्स फलं तं बुच्चइ दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥ ४५॥

आठ तरह के कर्म हैं, वे सभी पुगद्ल स्वरूप हैं, ऐसा जिन भगवान सर्वज्ञ देव कहते हैं। पचकर उदयमें आने वाले जिस कर्म का फल प्रसिद्ध दुःख है ऐसा कहा है।

(व्यवहार नयसे अध्यवसानादिका स्वामित्व वर्णन)

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥४६॥

ये सब अध्यवसानादिक भाव हैं वे जीव हैं ऐसा जिनवर-देवने जो उपदेश दिया है वह व्यवहारका मत है।

(उक्त कथनका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण)

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया ॥४७॥
एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाण।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छदो जीवो ॥ ४८॥

जैसे कोई राजा सेना सहित निकला वहां निश्चयकर सेनाके समूहको ऐसा कहना है। वह व्यवहार नयसे है कि यह राजा निकला उस सेनामें तो वास्तवमें एक ही राजा निकला उस सेनामें जो वास्तवमें एक ही राजा निकला है। इसी तरह इन अध्यवसान आदि अन्य भावोंको परमागममें ये जीव हैं ऐसा व्यवहार नयसे कहा हैं। निश्चय से विचारा जाय तो उन भावों में जीव तो एक ही है।

(परमार्थसे जीवका लक्षण)

अरसमरूवमगंध अव्वत्त चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥४९॥

हे भव्य, तू जीवको ऐसा जान कि वह रसरहित हैं, रूपरहित है, गन्ध रहित है इंद्रियोंके गोचर नहीं, जिसके चेतना गुण शब्द रहित है किसी चिन्हसे जिनकाग्रहण नहीं होता जिसका आकार कुछ कहने में नहीं आता—ऐसा जीव जानना।

(रूप-रसादि जीव का स्वरूप)

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णविय फासो ।
णवि रूव ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥५०॥
जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥५१॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२

जीवमें रूप नहीं है, गंधभी नहीं है रस भी नहीं है और स्पर्श भी नहीं है, रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान भी नहीं है संहनन भी नहीं है, तथा जीव में राग भी नहीं है द्वेष भी नहीं है, मोह भी नहीं विद्यमान है आस्रव भी नहीं है, कर्म भी नहीं है और नोकर्म भी उसके नहीं है, जीवके वर्ग नहीं है वर्गणा नहीं है कोई स्पर्धक भी नहीं है अध्यवसाय स्थान भी नहीं है और अनुभागस्थान भी नहीं है ।

(योगस्थानादि जीवका स्वरूप नहीं)

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥५३॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥५४॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥५५॥

जीवके कोई योगस्थान भी नहीं हैं, अथवा बंधस्थान भी नहीं हैं, और उदय स्थान भी नहीं हैं, कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं, जीवके स्थितिबंधस्थान भी नहीं हैं, अथवा संक्लेशस्थान भी नहीं हैं, विशुद्धिस्थान भी नहीं हैं, अथवा संयमलब्धि स्थान भी नहीं हैं, और जीवके जीवस्थान भी नहीं हैं, अथवा गुणस्थान भी नहीं हैं; क्योंकि ये सभी पुद्गल द्रव्यके परिणाम हैं।

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥

ये वर्ण आदि गुणस्थानपर्यंत भाव कहे गये हैं वे व्यवहार-नयसे तो जीवके ही होते हैं, इसलिये सूत्र में कहे हैं, परन्तु निश्चयनयके मतसे इनमेंसे कोई भी जीवके नहीं हैं।

एएहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य हुंति तस्स ताणि दु उवओग गुणाधिगो जम्हा ॥५७॥

इन वर्णादिक भावोंके साथ जीवका संबंध जल और दूधके एक क्षेत्रावगाहरूप संबंध सरीखा जानना और वे उस जीवके नहीं हैं इस कारण जीव इनसे उपयोग गुणकर अधिक है। इस उपयोग गुणकर जुदा जाना जाता है।

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥५८॥

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ॥५९॥

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य

सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥६०॥

जैसे मार्गमें चलते हुएको लुटा हुआ देखकर व्यहारी जन कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है वहां परमार्थसे विचारा जाय तो कोई मार्ग नहीं लूटता, जाते हुए लोक ही लुटते हैं उसी तरह जीवमें कर्मोंका और नोकर्मोंका वर्ण देखकर जीवका यह वर्ण है ऐसा जिनदेवने व्यवहारसे कहा है इसी तरह गंध रस स्पर्श रूप देह संस्थान आदिक जो सब हैं वे व्यवहारसे हैं ऐसा निश्चयनयके देखनेवाले कहते हैं।

(वर्णादिकका जीवके साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है)

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी ।

संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥६१॥

वर्ण आदिक हैं वे संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके उस संसारमें होते हैं, संसारसे छूटे हुए (मुक्त हुए) जीवोंके निश्चय कर वर्णादिक कोई भी नहीं है। इसलिये तादात्म्य संबंध भी नहीं है।

(वर्णादिकका जीवके साथ तादात्म्य माननेपर दोष)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि ।

जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥६२॥

(वर्णादिकके साथ जीवका तादात्म्य माननेवालेको कहते हैं कि हे मिथ्या अभिप्रायवाले) जो तू ऐसा मानेगा

कि ये वर्णादिक भाव सभी जीव हैं, तो तेरे मतमें जीव और अजीवका कुछ भेद नहीं रहेगा।

(जीवका वर्णादिकसे तादात्म्य माननेपर दोष)

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥ ६३ ॥

एवं पुग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥६४॥

अथवा संसारमें तिष्ठते हुए जीवोंके तेरे मतमें वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप हैं तो इसीकारण संसारमें स्थित जीव रूपीपनेको प्राप्त होगये। ऐसा होनेपर पुद्गलद्रव्य ही जीव सिद्ध हुआ पुद्गलके लक्षणके समान जीवका लक्षण होनेसे ही मूढबुद्धि निर्वाणको प्राप्त हुआ पुद्गल ही जीवपनेको प्राप्त हुआ।

(एकेन्द्रियादि पर्याय भी शुद्ध जीव नहीं हैं)

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥६५॥

एदेहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणाउ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पुग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥ ६६ ॥

एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीव तथा बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त ये जीव हैं वे नामकर्मकी प्रकृतियां हैं इन प्रकृतियोंकर ही करणस्वरूप होकर जीवसमास रचे गये हैं उन पुद्गलमय प्रकृतियोंसे रचे हुएको जीव कैसे कह सकते हैं।

(पर्याप्त-अपर्याप्त आदि संज्ञाएं व्यवहारसे हैं)

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव ।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥ ६७ ॥

जो पर्याप्त अपर्याप्त और जो सूक्ष्म बादर आदि जितनी देहकी जीवसंज्ञा कही हैं वह सभी सूत्रमें व्यवहारनयकर कही हैं ।

(गुणस्थान भी जीव-स्वरूप नहीं हैं)

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥ ६८ ॥

जो ये गुणस्थान हैं वे मोहकर्मके उदयसे होते हैं ऐसा सर्वज्ञके आगममें वर्णन किया गया है वे जीव कैसे हो सकते हैं ? नहीं हो सकते, क्योंकि जो हमेशा अचेतन कहे हैं ।

पहला जीवाजीवाधिकार पूर्ण हुआ ।



अथ कर्तृकर्माधिकारः

(जीवके कर्म-बन्ध क्यों होता है ?)

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि ।
अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥ ६९ ॥

कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं ॥ ७० ॥

यह जीव जबतक आत्मा और आस्रव इन दोनोंके भिन्न भिन्न लक्षण नहीं जानता तबतक वह अज्ञानी हुआ क्रोधादिक आस्रवों में प्रवर्तता है। क्रोधादिकोंमें वर्तते हुए उसके कर्मोंका संचय होता है इस प्रकार जीव के कर्मोंका बंध सर्वज्ञदेवोंने निश्चयसे कहा है।

(जीवके कर्म-बन्ध कब नहीं होता ?)

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥७१॥

जिस समय इस जीवको अपना और आस्रवोंका भिन्न लक्षण मालूम हो जाता है उसी समय उसके बंध नहीं होता।

(जीव आस्रवसे कैसे निवृत्त होता है ?)

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७२॥

आस्रवोंका अशुचिपना और विपरीतपना तथा ये दुःखके कारण हैं ऐसा जानकर यह जीव उनसे निवृत्ति करता है।

(आस्रवोंका क्षय कैसे होता है ?)

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ॥७३॥

(ज्ञानी विचारता है कि) मैं निश्चयसे एक हूं, शुद्ध हूं, ममतारहित हूं, ज्ञान-दर्शनकर पूर्ण हूं, ऐसे स्वभावमें तिष्ठता उसी चैतन्य अनुभवमें लीन हुआ इन क्रोधादिक सब आस्रवोंको क्षय कर देता हूं।

(आस्रवोंसे निवृत्ति कैसे होती है ?)

जीवणिबद्धा एए अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तए तेहिं ॥७४॥

ये आस्रव हैं, वे जीवके साथ निबद्ध हैं, अध्रुव हैं और अनित्य हैं तथा अशरण हैं, दुःखरूप हैं और जिनका फल दुःख ही है ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष उनसे निवृत्ति करता है।

(ज्ञानी कौन है ?)

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ७५ ॥

जो जीव इस कर्मके परिणामको उसीतरह नोकर्मके परिणामको नहीं करता परन्तु जानता है वह ज्ञानी है।

(ज्ञानी पुद्‌गलकर्मको जानता हुआ भी तद्‌रूप परिणत नहीं होता)

णवि परिणमइ ण गिण्हइ उपज्जइ ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ७६ ॥

ज्ञानी अनेक प्रकार पुद्‌गलद्रव्यके पर्यायरूप कर्मोंको जानता है तौभी निश्चयकर परद्रव्यके पर्यायोंमें उन स्वरूप नहीं परिणमता, ग्रहण भी नहीं करता और उनमें उत्पन्न भी नहीं होता।

(ज्ञानी अपने विविध परिणामोंको जानता हुआ भी परद्रव्यरूप परिणत नहीं होता)

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥ ७७ ॥

ज्ञानी अपने परिणामोंको अनेक प्रकार जानता हुआ भी निश्चय कर परद्रव्यके पर्यायमें न तो परिणमता है न उसको ग्रहण करता है और न उपजता है इसलिये उसके साथ कर्ता कर्मभाव नहीं है।

(ज्ञानी पुद्‌गलकर्मका फल जानता हुआ भी परद्रव्यको ग्रहण नहीं करता)

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥ ७८ ॥

ज्ञानी अनंत पुद्‌गल कर्मोंके फलोंको जानता हुआ प्रवर्तता है तौ भी निश्चयसे परद्रव्यके पर्यायमें नहीं परिणमता है

उसमें कुछ ग्रहण नहीं करता तथा उसमें उपजता भी नहीं है। इसप्रकार उसमें इसके कर्तृ-कर्मभाव नहीं है।

(पुद्गलद्रव्यका परिणमन भी परद्रव्यरूप नहीं है)

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥ ७९ ॥

पुद्गलद्रव्य भी परद्रव्यके पर्यायमें उसतरह नहीं परिणमता है, उसको ग्रहण भी नहीं करता और न उत्पन्न होता है, क्योंकि अपने भावोंमें ही परिणमता है।

(जीव और पुद्गलके परिणमनमें निमित्तमात्रपना होने पर भी कर्तृ-कर्मभावका अभाव है)

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८० ॥
णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि ॥ ८१ ॥
एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पुग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८२ ॥

पुद्गल जिसको जीवके परिणाम निमित्त हैं ऐसे कर्मपनेरूप परिणमते हैं उसीतरह जीव भी जिसको पुद्गलकर्मनिमित्त हैं ऐसे कर्मपनेरूप परिणमता है। जीव कर्मके गुणोंको नहीं करता उसीतरह कर्म जीवके गुणोंको नहीं करता। किंतु इन दोनोंके परस्पर निमित्त मात्रसे परिणाम जानो, इसी कारणसे

अपने भावोंकर आत्मा कर्ता कहा जाता है, परन्तु पुद्गल कर्म कर किये गये सब भावोंका कर्ता नहीं है।

(निश्चयनयसे जीव स्व-परिणामोंका ही कर्त्ता और भोक्ता है)

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८३ ॥

निश्चयनयका यह मत है कि आत्मा अपनेको ही करता है फिर वह आत्मा अपनेको ही भोगता है ऐसा हे शिष्य! तू जान।

(व्यवहारनयसे जीव पुद्गलकर्मोंका भी कर्त्ता और भोक्ता है)

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ८४ ॥

व्यवहारनयका यह मत है कि आत्मा अनेक प्रकार पुद्गल कर्मोंको करता है और उसी अनेक प्रकार पुद्गलकर्मको भोगता है।

(उक्त व्यवहारमें दूषण)

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दोकिरियावादित्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ८५ ॥

जो आत्मा इस पुद्गलकर्मको करे और उसीको भोगे तो वह आत्मा दो क्रियासे अभिन्न ठहरे ऐसा प्रसंग आता है सो यह जिनदेवका मत नहीं है।

(दो क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं)

जह्मा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति ॥ ८६ ॥

जिसकारण आत्माके भावको और पुद्गलके भावको दोनों ही को आत्मा करता है ऐसा कहते हैं इसीकारण दो क्रियाओं को एकके ही कहनेवाले मिथ्यादृष्टि ही हैं ।

(मिथ्यात्वादिकी द्विविधताका निरूपण)

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोधादिया इमे भावा ॥ ८७ ॥

जो मिथ्यात्व कहा गया था वह दो प्रकार है एक जीव-मिथ्यात्व एक अजीवमिथ्यात्व और उसीतरह अज्ञान, अविरति, योग, मोह, और क्रोधादि कषाय ये सभी भाव जीव अजीवके भेदकर दो दो प्रकार हैं ।

(मिथ्यात्वादिकी जीवाजीवरूपताका विश्लेषण)

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमजीवं ।
उवओगो अण्णाणं अविरइ मिच्छं च जीवो दु ॥ ८८ ॥

जो मिथ्यात्व योग अविरति अज्ञान ये अजीव हैं वे तो पुद्गलकर्म हैं और जो अज्ञान अविरति मिथ्यात्व ये जीव हैं तो वे उपयोग हैं ।

(मिथ्यात्वादि चैतन्य परिणामके विकार हैं)

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णायव्वो ॥ ८९ ॥

अनादिसे मोहयुक्त होनेसे उपयोगके अनादिसे लेकर तीन परिणाम हैं वे मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव ये तीन जानने।

(आत्माके त्रिविध परिणाम-विकारोंका कर्तृत्वपना)

एएसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥ ९० ॥

मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति इन तीनोंका अनादिसे निमित्त होनेपर आत्माका उपयोग शुद्ध नयकर एक शुद्ध निरंजन है तौभी मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इस तरह तीन प्रकार परिणामवाला है। वह आत्मा इन तीनोंमेंसे जिस भावको स्वयं करता है उसीका वह कर्ता होता है।

(आत्माके विकार भावोंका कर्त्ता होनेपर पुद्गलद्रव्यका
स्वतः कर्मरूप परिणमन)

जं कुणइ भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं ॥ ९१ ॥

आत्मा जिस भावको करता है उस भावका कर्ता आप होताहै उसके कर्ता होने पर पुद्गलद्रव्य अपने आप कर्मपनेरूप परिणमता है।

(जीव अज्ञानसे ही कर्मोंका कर्त्ता होता है)

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥ ९२ ॥

जीव आप अज्ञानी हुआ परको अपने करता है और अपने को परके करता है इसतरह वह कर्मोंका कर्ता होता है।

(जीव ज्ञानसे ही कर्मोंका अकर्त्ता रहता है)

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥ ९३ ॥

जो जीव अपनको पर नहीं करता और परको अपना भी नहीं करता वह जीव ज्ञानमय है, कर्मोंका करनेवाला नहीं है।

(अज्ञानसे कर्मोत्पत्तिका उदाहरण)

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेइ कोहोंह।
कत्ता तस्सुवओगस्स होइ सो अत्तभावस्स ॥ ९४ ॥

यह तीन प्रकारका उपयोग अपनेमें विकल्प करता है कि मैं क्रोध स्वरूप हूं उस अपने उपयोग भावका वह कर्ता होता है

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्माई।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥ ९५ ॥

यह उपयोग तीन प्रकारका होनेसे धर्मआदिक द्रव्यरूप आत्मविकल्प करता है, उनको अपने जानता है, वह उस उपयोग रूप अपने भावका कर्ता होता है।

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ।
अप्पाणं अवि य परं करेइ अण्णाणभावेण ॥ ९६ ॥

ऐसे पूर्वकथित रीतिसे अज्ञानी अज्ञानभाव कर पर द्रव्योंको अपनी करता है और अपनेको परका करता है।

(जीव ज्ञान के द्वारा ही कर्तृत्व बुद्धि को छोड़ता है)

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो ।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ॥ ९७ ॥

इस पूर्वकथित कारणसे निश्चयके जानने वाले ज्ञानियोंने वह आत्मा कर्ता कहा है इसतरह जो जानता है वह ज्ञानी हुआ सब कर्तापने को छोड़ देता है ।

(जीव व्यवहारसे ही परका कर्त्ता है)

ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥९८॥

आत्मा व्यवहार कर घट पट रथ इन वस्तुओंको करता है और इंद्रियादिक करणपदार्थोंको करता है और ज्ञानावरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्यकर्म भावकर्मोंको करता है तथा इस लोकमें अनेकप्रकार के शरीरादि नोकर्मोंको करता है ।

(परन्तु परमार्थसे परका कर्त्ता नहीं है)

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥ ९९ ॥

जो वह आत्मा परद्रव्योंको करे तो वह आत्मा उन परद्रव्योंसे नियमकर तन्मय होजाय परन्तु तन्मय नहीं होता इसी कारण वह उनका कर्ता नहीं है ।

(जीव योग और उपयोगका कर्त्ता है)

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥१००॥

जीव घड़ेको नहीं करता और पटको भी नहीं करता शेष द्रव्यों को भी नहीं करता। जीवके योग और उपयोग ये दोनों घटादिकके उत्पन्न करनेके निमित्त हैं, उन दोनों योग उपयोगोंका यह जीव कर्ता है।

(ज्ञानी ज्ञानका ही कर्त्ता है, पर भावका नहीं)

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥१०१॥

जो ज्ञानावरणादिक पुद्गल द्रव्यों के परिणाम हैं उन को आत्मा नहीं करता, जो जानता है वह ज्ञानी है।

(अज्ञानी जीव भी स्व-विकारभावोंका ही कर्त्ता है, पर द्रव्यका नहीं)

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥१०२॥

आत्मा जिस शुभ अशुभ अपने भावको करता है वह उस भावका कर्ता निश्चयसे होता है वह भाव उसका कर्म होता है वही आत्मा उस भावरूप कर्मका भोक्ता होता है।

(अन्य द्रव्यका गुण अन्य द्रव्यमें नहीं जा सकता)

जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥ १०३ ॥

जो द्रव्य जिस अपने द्रव्यस्वभावमें तथा अपने जिस गुणमें वर्तता है वह अन्य द्रव्यमें तथा गुणमें संक्रमणरूप नहीं

होता पलटकर अन्यमें नहीं मिल जाता, वह अन्यमें नहीं मिलता हुआ, उस अन्य द्रव्यको कैसे परिणमा सकता है कभी नहीं परिणमा सकता।

(निष्कर्ष)

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि।
त उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥१०४॥

आत्मा पुद्गलमयकर्ममें द्रव्यको तथा गुणको नहीं करता उसमें उन दोनोंको नहीं करता हुआ उसका वह कर्ता कैसे हो सकता है।

(कर्म बन्ध उपचारमात्र है)

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण ॥१०५॥

जीवको निमित्तरूप होनेसे कर्मबंधका परिणाम होता है उसे देखकर जीवने कर्म किये हैं यह उपचारमात्रसे कहा जाता है।

(औपचारिकताका उदाहरण)

जोवेहि कदे जुद्धे राएण कदंति जंपदे लोगो।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ॥१०६॥

जैसे योधाओंने युद्ध किया उस जगह लोक ऐसा कहते हैं कि राजा ने युद्ध किया सो यह व्यवहारसे कहना है उसीतरह ज्ञानावरणादि कर्म जीवने किये हैं ऐसा कहना व्यवहारसे है।

(आत्मा व्यवहारसे ही उत्पाद आदिका कर्त्ता है)

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥१०७॥

आत्मा पुद्गलद्रव्यको उत्पन्न करता है और करता है, बांधता है, परिणमाता है तथा ग्रहण करता है ऐसा व्यवहार नयका वचन है।

(उक्त कथनका उदाहरण)

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥१०८॥

जैसे प्रजामें राजा दोष और गुणोंका उत्पन्न करने वाला है ऐसा व्यवहारसे कहा है, उसीतरह जीवको भी व्यवहारसे पुद्गलद्रव्यमें द्रव्यगुणका उत्पादक कहा गया है।

(बन्ध-प्रत्यय कर्मके कर्त्ता हैं, जीव नहीं)

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा च बोद्धव्वा ॥१०९॥

तेसिं पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥११०॥

एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा ।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा ॥१११॥

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा ।
तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥११२॥

प्रत्यय अर्थात् कर्मबंधके कारणजो आस्रव वे सामान्यसे चार बंधके कर्ता कहे हैं वे मिथ्यात्व अविरमण और कषाय योग जानने और उनका फिर यह भेद तेरह भेदरूप कहा गया है वह मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर सयोगकेवली तक है, वे तेरह गुणस्थान जानने। ये निश्चय दृष्टिकर अचेतन हैं क्योंकि पुद्गल कर्मके उदयसे हुए हैं, जो वे कर्मको करते हैं, उनका भोक्ता आत्मा नहीं होता, ये प्रत्यय गुणनाम वाले हैं, क्योंकि ये कर्मको करते हैं. इसकारण जीव तो कर्मका कर्ता नहीं है और ये गुण ही कर्मोंको करते हैं ।

(जीव और बन्ध-प्रत्यय एक नहीं है)

जय जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो ।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥११३॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो ।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥११४॥
अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा ।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥११५॥

जैसे जीवके एकरूप उपयोग है उसी तरह जो क्रोध भी एकरूप होजाय तो इस तरह जीव और अजीवके एकपना प्राप्त हुआ, ऐसा होनेसे इस लोकमें जो जीव है, वही नियमसे वैसा

ही अजीव हुआ, ऐसे दोनोंके एकत्व होनेमें यह दोष प्राप्त हुआ। इसीतरह प्रत्यय नोकर्म और कर्म इनमें भी यही दोष जानना। अथवा इस दोषके भयसे तेरे मतमें क्रोध अन्य है और उपयोगस्वरूप आत्मा अन्य है, और जैसे क्रोध है उसी तरह प्रत्यय कर्म और नोकर्म ये भी आत्मासे अन्य ही हैं।

(पुद्गल द्रव्य भी परिणामनशील है)

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जइ पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥११६॥

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥११७॥

जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।
ते सयमपरिणमंते कहं तु परिणामयदि चेदा ॥११८॥

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥११९॥

णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पुग्गलं दव्वं।
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥१२०॥

पुद्गलद्रव्य जीवमें आप न तो बंधा है और न कर्मभावसे स्वयं परिणमता है, जो ऐसा मानो तो यह पुद्गलद्रव्य अपरिणामी हो जायगा, अथवा कार्माणवर्गणा आप कर्मभावसे नहीं परिणमती ऐसा मानिये तो संसारका अभाव ठहरेगा, अथवा

सांख्यमतका प्रसंग आयेगा। जीव ही पुद्गलद्रव्योंको कर्म भावोंसे परिणमाता है ऐसा माना जाय तो वे पुद्गलद्रव्य आप ही नहीं परिणमते उनको यह चेतन जीव कैसे परिणमा सकता है, यह प्रश्न हो सकता है अथवा पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मभावसे परिणमता है ऐसा माना जाय तो जीव कर्म भावकर कर्मरूप पुद्गलको परिणमाता है, ऐसा कहना झूठ हो जाय। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल द्रव्य कर्मरूप परिणत हुआ, नियम से ही कर्मरूप होता है ऐसा होनेपर वह पुद्गल द्रव्य ही ज्ञानावरणादिरूप परिणत कर्म जानो।

(जीव द्रव्य भी परिणमन-शील है)

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।
जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदी ॥१२१॥

अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहि भावेहिं।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥१२२॥

पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं।
तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥१२३॥

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥१२४॥

कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥१२५॥

सांख्यमत वाले शिष्यको, आचार्य कहते हैं कि हे भाई ! तेरी बुद्धिमें यदि यह जीव कर्मोंमें आप तो बंधा नहीं है और क्रोधादि भावोंकर आप परिणमता भी नहीं है ऐसा है तो वह अपरिणामी होगा, ऐसा होनेपर क्रोधादि भावों कर जीवको आप नहीं परिणत होनेपर संसारका अभाव हो जायगा, और सांख्यमत का प्रसंग आवेगा। यदि कहेगा कि पुद्गल कर्म क्रोध है वह जीवको क्रोध भावरूप परिणमाता है तो आप स्वयं न परिणमते हुए जीवको क्रोध कैसे परिणमा सकता है ऐसा प्रश्न है। अथवा तेरी ऐसी समझ है कि अपने आप यह आत्मा क्रोध भाव कर परिणमता है तो क्रोध जीवको क्रोध भावरूप परिणमाता है, ऐसा कहना मिथ्या ठहरता है। इसलिये यह सिद्धांत है कि आत्मा क्रोधमें उपयोग सहित होता है अर्थात् उपयोग क्रोधाकार रूप परिणमता है तब तो क्रोध ही है, मानसे उपयुक्त होता है तब मान ही है, मायाकर उपयुक्त होता है तब माया ही है और लोभकर उपयुक्त होता है तब लोभ ही है।

(ज्ञान-अज्ञानमय भावोंका कर्तृपना)

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥१२६॥

जो आत्मा जिस भावको करता है वह उस भावरूप कर्मका कर्ता होता है। उस जगह ज्ञानीके तो वह भाव ज्ञानमय है और अज्ञानीके अज्ञानमय है।

(अज्ञानी कर्मका कर्त्ता है, ज्ञानी नहीं)

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि ।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि ॥१२७॥

अज्ञानीका अज्ञानमय भाव है, इस कारण अज्ञानी कर्मों-को करता है और ज्ञानीके ज्ञानमय भाव होता है, इसलिये वह ज्ञानी कर्मोंको नहीं करता।

(ज्ञानीके ज्ञानमय और अज्ञानीके अज्ञानमय भाव क्यों होते हैं ?)

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥१२८॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥१२९॥

जिस कारण ज्ञानमय भावमें ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है। इस कारण ज्ञानी के निश्चय कर सब भाव ज्ञानमय हैं। और जिस कारण अज्ञानमय भावसे अज्ञानमय ही भाव होता है, इस कारण अज्ञानीके अज्ञानमयही भाव उत्पन्न होते हैं।

(उक्त कथनका दृष्टान्तद्वारा स्पष्टीकरण)

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा ।
अयमयया भावादो जह जायंते तु कडयादो ॥१३०॥
अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१३१॥

जैसे सुवर्णमय भावसे सुवर्णमय कुंडलादिक भाव होते हैं, और लोहमय भावसे लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव होते हैं। उसका दार्ष्टांत। उसी तरह अज्ञानीके अज्ञानमय भावसे

अनेक तरहके अज्ञानमय भाव होते हैं, और ज्ञानीके सभी ज्ञानमय भाव होनेसे ज्ञानमय भाव होते हैं।

(अज्ञानादि भावोंके कारणोंका वर्णन)

अण्णाणस्स स उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥१३२॥

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥१३३॥

तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥१३४॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥१३५॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥१३६॥

जो, जो जीवोंके अन्यथास्वरूपका जानना है वह अज्ञानका उदय है और जो जीवके अतत्त्वका श्रद्धान है वह मिथ्यात्वका उदय है और जो जीवोंके अत्यागभाव है वह असंयमका उदय है और जो जीवोंके मलिन (जानपनेकी स्वच्छतासे रहित) उपयोग है वह कषायका उदय है और जो जीवोंके शुभरूप अथवा अशुभरूप मन, वचन, कायकी चेष्टाके उत्साहका करने योग्य, अथवा न करने योग्य, व्यापार है उसे योगका उदय जानो। इन-

को हेतुभूत होनेपर जो कार्माणवर्गणारूप आकार प्राप्त हुआ ज्ञानावरण आदि भावोंकर आठ प्रकार परिणमता है वह निश्चय कर जब कार्माणवर्गणारूप आया हुआ जीवमें बंधता है उससमय उन अज्ञानादिक परिणाम भावोंका कारण जीव होता है।

(जीवका परिणाम पुद्गलद्रव्यसे भिन्न ही है)

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥१३७॥

एकस्स दु परिणामा जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो ॥१३८॥

जो ऐसा माना जाय कि जीवके परिणाम रागादिक हैं वे निश्चयसे कर्मके साथ होते हैं तो जीव और कर्म ये दोनों ही रागादि परिणामको प्राप्त हो जावें इसलिये सिद्ध हुआ कि इन रागादिकोंसे एक जीवका ही परिणाम उत्पन्न होता है वह कर्मका उदयरूप निमित्त कारणसे जुदा एक जीवका ही परिणाम है।

(पुद्गलका परिणाम जीवसे भिन्न ही है)

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पुग्गलजीवा हु दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥१३९॥

एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥ १४०॥

जो जीवके साथ ही पुद्गलद्रव्यका कर्मरूप परिणाम होता

है ऐसा माना जाय तो इसतरह पुद्गल और जीव दोनों ही कर्म पनेको प्राप्त हुए ऐसा हुआ। इसलिये जीवभाव निमित्त कारणके विना जुदा ही कर्मका परिणाम है। सो एक पुद्गल द्रव्यका ही कर्मभाव कर परिणाम है।

(व्यवहार और निश्चय नयसे जीव और कर्मकी बद्ध-अबद्धता)

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥१४१॥

जीवमें कर्म बद्ध है अर्थात् जीवके प्रदेशोंसे बंधा हुआ है, तथा स्पर्शता है ऐसा व्यवहार नयका वचन है और जीवमें अबद्ध स्पृष्ट है अर्थात् न बँधता है न स्पर्शता है ऐसा शुद्धनयका वचन है।

(समयसार बद्ध-अबद्धरूप नय पक्षसे परे है)

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४२॥

जीव में कर्म बंधे हुए हैं अथवा नहीं बंधे हुए हैं इस प्रकार तो नयपक्ष जानो और जो पक्षसे दूर-वर्ती कहा जाता है, यह समयसार है निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है।

(नय-पक्षसे रहित आत्मज्ञका स्वरूप)

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥१४३॥

जो पुरुष अपने शुद्धात्मासे प्रतिबद्ध है आत्माको जानता है वह दोनों ही नयोंके कथनको केवल जानता ही है परन्तु

नय पक्षको कुछ भी नहीं ग्रहण करता, क्योंकि वह नयके पक्ष से रहित है।

(नय-पक्षपातसे रहित ही समयसार है)

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥१४४॥

जो सब नयपक्षोंसे रहित है वही समयसार ऐसा कहा है। यह समयसार ही केवल सम्यग्दर्शन ज्ञान ऐसे नामको पाता है। उसीके नाम हैं वस्तु दो नहीं हैं।

कर्ता-कर्म नामा दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ।

—:★卐★:—

अथ पुण्यपापाधिकारः

(कर्मके शुभ-अशुभ स्वभावका वर्णन)

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥१४५॥

अशुभ कर्म तो पाप स्वभाव है बुरा है और शुभकर्म पुण्य-स्वभाव है अच्छा है ऐसा जगत् जानता है। परन्तु परमार्थ दृष्टि से कहते हैं कि जो प्राणीको संसारमें ही प्रवेश कराता है वह कर्म शुभ अच्छा कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता।

(शुभ और अशुभ दोनों ही कर्म बेड़ीरूप हैं)

सौवणियम्हि णियलं बंधदि कालायसं च जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥

जैसे लोहेकी बेड़ी पुरुषको बांधती है और सुवर्णकी भी बांधती है उसीतरह शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म जीवको बांधता ही है ।

(मुमुक्षुके लिए दोनों ही हेय हैं)

तह्मा दु कुसीलेहिय रा॰ मा कुणह मा व संसग्गं ।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥१४७॥

हे मुनिजन हो ! इसलिये (पूर्वकथित शुभ अशुभ कर्म हैं वे कुशील हैं निंद्य स्वभाव हैं) उन दोनों कुशीलोंसे प्रीति मत करो अथवा संबंध भी मत करो, क्योंकि कुशीलके संसर्गसे और रागसे अपनी स्वाधीनताका विनाश होता है अपना घात आपसे ही होता है ।

(शुभ-अशुभ कर्मकी प्रतिषेध्यताका दृष्टान्तद्वारा समर्थन)

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥१४८॥

एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णाउं ।
वज्जंति परिहरन्ति य तस्सं सग्गं सहावरया ॥१४९॥

जैसे कोई पुरुष निंदित स्वभाववाले किसी पुरुषको जान

कर उसके साथ संगति और राग करना छोड़ देता है, इसी तरह ज्ञानी जीव कर्म-प्रकृतियोंके शील स्वभावको निंदने योग्य खोटा जानकर उससे राग छोड़ देते हैं, और उसकी संगति भी छोड़ देते हैं पश्चात् अपने स्वभावमें लीन हो जाते हैं।

(राग बंधका और विराग मोक्षका कारण है)

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥१५०॥

रागी जीव तो कर्मोंको बांधता है तथा वैराग्यको प्राप्त हुआ जीव कर्मसे छूट जाता है यह जिन भगवानका उपदेश है, इस कारण भो भव्य जीवो तुम कर्मोंमें प्रीति मत करो, रागी मत हो ओ।

(शुद्ध आत्म-स्वरूपमें अवस्थित जीव ही मोक्षका अधिकारी है)

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥१५१॥

निश्चयकर परमार्थरूप जीवनामा पदार्थका स्वरूप यह है कि जो शुद्ध है केवली है मुनि है ज्ञानी है ये जिस के नाम हैं, उस स्वभावमें तिष्ठे हुए मुनि मोक्षको प्राप्त होते हैं।

(ज्ञानस्वरूपमें स्थिरताके विना व्रतादिक मोक्षके कारण नहीं हैं)

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू ॥१५२॥

जो ज्ञान स्वरूप आत्मामें तो स्थिर नहीं है और तप करता

है तथा व्रतोंको धारण करता है उस सब तप व्रतको सर्वज्ञ-देव अज्ञानतप अज्ञानव्रत कहते हैं।

(ज्ञान मोक्षका कारण है और अज्ञान बंधका कारण है)

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥१५३॥

जो कोई व्रत और नियमों को धारण करते हैं, उसीतरह शील और तपको करते हैं परन्तु परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मासे बाह्य हैं अर्थात उसके स्वरूपका-ज्ञान श्रद्धान जिनके नहीं हैं, वे मोक्षको नहीं पाते।

(पुण्य कर्मके पक्षपातीको प्रतिबोधनार्थ निर्देश-कथन)

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता ॥१५४॥

जोजीव परमार्थसे बाह्य हैं परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा को नहीं अनुभवते वे जीव अज्ञानसे पुण्यको अच्छामानके चाहते हैं, वह पुण्य संसारके गमनका कारण है तो भी, वे जीव मोक्षका कारण ज्ञानस्वरूप आत्माको नहीं जानते। पुण्यको ही मोक्षका कारण मानते हैं।

(परमार्थसे मोक्षके कारणोंका दिग्दर्शन)

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥१५५॥

जीवादिक पदार्थोंका श्रद्धान तो सम्यक्त्व है और उन

जीवादि पदार्थोंका अधिगम वह ज्ञान है तथा रागादिकका त्याग वह चारित्र है यही मोक्षका मार्ग है।

(परमार्थरूप मोक्ष-कारणोंसे भिन्न कर्मोंका प्रतिषेध)

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥१५६॥

पंडित जन निश्चयनयके विषयको छोड़ व्यवहार कर प्रवर्तते हैं परन्तु परमार्थभूत आत्मस्वरूपको आश्रित यतीश्वरोंके ही कर्मका नाश कहा गया है। व्यवहार में प्रवर्तनेवालेका कर्मक्षय नहीं होता।

(कर्म मोक्ष-कारणोंके प्रतिरोधक हैं)

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥१५७॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥१५८॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥१५९॥

जैसे वस्त्रका सफेदपना मलके मिलने कर लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है तिरोभूत होता है उसी तरह मिथ्यात्व-मलसे व्याप्त हुआ आत्माका सम्यक्त्वगुण निश्चयकर आच्छादित हो रहा है ऐसा जानना चाहिये। जैसे वस्त्रका सफेदपन मलके मेलसे लिप्त हुआ नष्ट हो जाता है उसी

तरह अज्ञानमलकर व्याप्त हुआ आत्माका ज्ञानभाव आच्छादित होता है ऐसा जानना चाहिये। तथा जैसे कपड़ेका सफेदपन मलके मिलने व्याप्त हुआ नष्ट हो जाता है उसी तरह कषायमलकर व्याप्त हुआ आत्माका चारित्र भाव भी आच्छादित हो जाता है ऐसा जानना चाहिये।

(कर्मके स्वयं बंधपनेकी सिद्धि)

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणवच्छरणो।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥१६०॥

वह आत्मा स्वभावसे सबका जानने वाला और देखने वाला है तो भी अपने कर्मरूपी रजसे आच्छादित (व्याप्त) हुआ संसारको प्राप्त होता हुआ सब तरहसे वस्तुको नहीं जानता।

(कर्मके कारण मोक्षके कारण सम्यग्दर्शनादि भावोंके रोकने वाले भावोंका प्रदर्शन)

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो ॥१६१॥
णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥१६२॥
चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो ॥१६३॥

सम्यक्त्वका रोकनेवाला मिथ्यात्वकर्म है ऐसा जिनवरदेवने कहा है उस मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव मिथ्या-

दृष्टि हो जाता है ऐसा जानना चाहिये। ज्ञानका रोकने वाला अज्ञान है ऐसा जिनवरने कहा है, उसके उदयसे यह जीव अज्ञानी होता है ऐसा जानना चाहिये। चारित्रका प्रतिबंधक कषाय है ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है, उसके उदयसे यह जीव अचारित्री हो जाती है ऐसा जानना चाहिये।

तीसरा पुण्य-पाप नामा अधिकार पूर्ण हुआ।



अथ आस्रवाधिकारः

(आस्रवका स्वरूप निर्देश)

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णासण्णा दु ।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥१६४॥

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिंपि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥१६५॥

मिथ्यात्व अविरति और कषाय योग ये चार आस्रवके भेद चेतनाके और जड़-पुद्गल के विकार ऐसे दो दो भेद जुदे २ हैं। उनमें से चेतनके विकार हैं वे उस जीव में बहुत भेद लिये हुए हैं वे उस जीवके ही अभेदरूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्गलके विकार हैं वे तो ज्ञानावरण आदि कर्मोंके बंधने के कारण हैं और उन मिथ्यात्व आदि भावोंको भी राग-द्वेष आदि भावों का करने वाला जीव कारण होता है।

(ज्ञानीके आस्रवभावोंका प्रतिषेध)

णत्थि दु आसववंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अवंधंतो ॥१६६॥

सम्यग्दृष्टिके आस्रव बंध नहीं है और आस्रवका निरोध है और जो पहले के बांधे हुए सत्तामें मौजूद हैं उनको आगामी नहीं बांधता हुआ वह जानता ही है।

(राग-द्वेष-मोह भाव ही आस्रव है)

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो ।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरिं ॥१६७॥

जो रागादिकर युक्तभाव जीवकर किया गया हो वही नवीन कर्मका बंध करनेवाला कहा गया है और जो रागादिक भावों-से रहित है वह बंध करनेवाला नहीं है केवल जाननेवाला ही है।

(रागादिरहित शुद्धभावों की संभवताका प्रदर्शन)

पक्के फलह्मि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥१६८॥

जैसे वृक्ष तथा बेलिका फल पक कर गिरजाय वह फिर गुच्छेसे नहीं बंधता उसी तरह जीवमें पुद्गल कर्म भाव रूप पककर झड़ जाय अर्थात निर्जरा हो गई हो वह कर्म फिर उदय नहीं होता।

(ज्ञानीके द्रव्यास्रव नहीं होता)

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥ १६९ ॥

उस पूर्वोक्त ज्ञानीके पहले अज्ञान अवस्थामें बंधे हुए सभी कर्म जीवके रागादिभावोंके हुए विना पृथ्वीके पिंडसमान हैं जैसे मट्टी आदि अन्य पुगद्ल स्कंध हैं उसी तरह वे भी हैं और वे कार्मण शरीर के साथ बंधे हुए हैं ।

(ज्ञानीके निरास्रवताकी सिद्धि)

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अवंधोत्ति णाणी दु ॥ १७० ॥

जिस कारण चार प्रकारके जो पूर्व कहे गये मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग आस्रव हैं वे दर्शनज्ञानगुणोंकर समय समय अनेक भेद लिये कर्मोंको बांधते हैं इस कारण ज्ञानी तो अबंधरूप ही है ।

(ज्ञान गुणकी क्षायोपशमिक जघन्य परिणति बंधका कारण है)

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥१७१॥

जिसकारण ज्ञान गुण फिर भी जघन्य ज्ञान गुणसे अन्यपनेरूप परिणमता है, इसी कारण वह ज्ञानगुण कर्मका बंध करने वाला कहा गया है ।

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहरणभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १७२ ॥

दर्शनज्ञानचारित्र जिसका कारण जघन्य भावकर परिणमते हैं इस कारणसे ज्ञानी अनेक प्रकारके पुद्गलकर्मोंसे बंधता है !

(सम्यग्दृष्टिके अबन्धकपनेकी सिद्धि)

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण ॥ १७३ ॥
संती दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरुसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥ १७४॥
होदूण णिरुभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहि ॥ १७५ ॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥चतुष्कं १७६

सम्यग्दृष्टिके सभी पूर्व अज्ञानअवस्थामें बांधे मिथ्यात्वादि आस्रव सत्तारूप मौजूद हैं वे उपयोगके प्रयोग करने रूप जैसे हो वैसे उसके अनुसार कर्म भावकर आगामी बंधको प्राप्त होते हैं और जो पूर्व बंधे प्रत्यय उदय विना आये भोगने योग्यपनेसे रहित होकर तिष्ठ रहे हैं वे फिर आगामी उसतरह बंधते हैं जैसे ज्ञानावरणादिभावोंकर सात आठ प्रकार फिर भोगने योग्य हो जायँ, और वे पूर्व बंधे प्रत्यय सत्तामें

ऐसे हैं जैसे इसलोक में पुरुषके बालिका स्त्री भोगने योग्य नहीं होती, और वे ही भोगने योग्य होते हैं तब पुरुषको बांधते हैं जैसे वही बाला स्त्री जवान हो जाय तब पुरुषको बांधलेती है अर्थात पुरुष उसके आधीन हो जाता है यही बंधना है। इसी कारणसे सम्यग्दृष्टि अबंधक कहा गया है क्योंकि आस्रवभाव जो राग-द्वेष-मोह उनका अभाव होनेसे मिथ्यात्वआदि प्रत्यय सत्तामें होने पर भी अगामी कर्मबंधके करने वाले नहीं कहे गये हैं।

(सम्यग्दृष्टि रागादिके अभावसे अबन्धक ही है)

रागो दोहो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदूण पच्चया होंति ॥ १७७॥

हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण वज्झंति ॥ १७८ ॥

राग द्वेष और मोह ये आस्रव सम्यग्दृष्टिके नहीं हैं इसलिये आस्रवभावके विना द्रव्यप्रत्यय कर्मबंधको कारण नहीं है मिथ्यात्वआदि चार प्रकारका हेतु आठ प्रकारके कर्मके बंधनेका कारण कहागया है और उन चार प्रकारके हेतुओंको भी जीवके रागादिक भाव कारण है सो सम्यग्दृष्टिके उन रागादिक भावोंका अभाव होनेसे कर्मबंध नहीं है।

(उपर्युक्त कथनका दृष्टांत द्वारा समर्थन)

जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उयरग्गिसंजुत्तो ॥ १७९ ॥

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा उ ते जीवा ॥ १८० ॥

जैसे पुरुषकर ग्रहण किया गया आहार वह उदराग्नि कर युक्त हुआ अनेक प्रकार मांस-रस-रुधिर आदि भावोंरूप परिणमता है उसी तरह ज्ञानीके पूर्व बंधे जो द्रव्यास्रव वे बहुत भेदों को लिये कर्मोंको बांधते हैं। वे जीव शुद्ध नयसे छूट गये हैं अर्थात रागादि अवस्थाको प्राप्त हुए हैं।

आस्रव नामा चौथा अधिकार पूर्ण हुआ।

—:o:—

अथ संवराधिकारः

(उपयोग-विशुद्ध आत्मा किसी भी कर्मका आस्रव नहीं करता है)

उवओए उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥ १८१ ॥

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥ १८२॥

एयं तु अविवरीदं णाणं जइया उ होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥१८३॥

उपयोगमें उपयोग है क्रोध आदिकों में कोई उपयोग नहीं और निश्चय कर क्रोधमें ही क्रोध है उपयोगमें निश्चय कर

क्रोध नहीं है, आठ प्रकारके ज्ञानावरण आदि कर्मों में तथा शरीर आदि नो कर्मोंमें भी उपयोग नहीं है और उपयोगमें कर्म और नो कर्म भी नहीं है, जिस कालमें ऐसा सत्यार्थ ज्ञान जीवके हो जाता है उस कालमें केवल उपयोग स्वरूप शुद्धात्मा उपयोग के विना अन्य कुछ भी भाव नहीं करता।

(भेद विज्ञानसे शुद्धात्मोपलब्धिकी दृष्टान्तद्वारा सिद्धि)

जह कणयमग्गितवियंपि कणयहावं ण तं परिच्चयइ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी उ णाणित्तं ॥१८४॥

एवं जाणइ णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥१८५॥

जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त हुआ भी अपने सुवर्णपनेको नहीं छोड़ता, उसीतरह ज्ञानी कर्मोंके उदयसे तप्तायमान हुआ भी ज्ञानी अपने स्वभावको नहीं छोड़ता, इस तरह ज्ञानी जानता है। और अज्ञानी रागको ही आत्मा जानता है, क्योंकि वह अज्ञानी अज्ञानरूप अंधकारसे व्याप्त है इसलिये आत्माके स्वभावको नहीं जानता हुआ प्रवर्तता है।

(शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्तिसे ही संवर होता है)

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥१८६॥

शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव शुद्धही आत्माको पाता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्माको ही पाता है।

(संवर होनेके प्रकारका निरूपण)

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णह्मि ॥१८७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९॥

जो जीव अपने आत्माको अपने कर दो पुण्य-पापरूप शुभाशुभ योगोंसे रोकके दर्शन ज्ञानमें ठहरा हुआ अन्य वस्तुमें इच्छारहित और सब परिग्रहसे रहित हुआ आत्माकर ही आत्माको ध्याता है तथा कर्म-नोकर्मको नहीं ध्याता और आप चेतनारूप होनेसे उस स्वरूप एकपनेको अनुभवता है विचारता है वह जीव दर्शन ज्ञानमय हुआ, अन्यमय नहीं होके, आत्माको ध्याता हुआ थोड़े समयमें ही कर्मोंकर रहित आत्माको पाता है ।

(संवर होनेके क्रमका निरूपण)

तेसिं हेऊ भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥ १९०
हेउअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥१९१॥

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होइ॥ १९२॥

पूर्व कहे हुए राग-द्वेष-मोहरूप आस्रवोंके हेतु सर्वज्ञ देवने मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरत भाव और योग, ये चार अध्यवसान कहे हैं सो ज्ञानीके इन हेतुओंका अभाव होनेसे नियमसे आस्रवका निरोध होता है और आस्रव भावके विना (न होने से) कर्मका भी निरोध होता है और कर्मके अभाव से नोकर्मोंका भी निरोध होता है तथा नोकर्मके निरोध होनेसे संसारका निरोध होता है।

पांचवाँ संवर अधिकार पूर्ण हुआ।

—:*o*:—

अथ निर्जराधिकारः

द्रव्य निर्जरा का स्वरूप

(सम्यग्दृष्टिके भोग निर्जराके निमित्त ही होते हैं)

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणं चेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं॥ १९३॥

समयग्दृष्टि जीव जो इन्द्रियोंकर चेतन और अन्य अचेतन द्रव्योंका उपभोग करता है उनको भोगता है वह सब ही निर्जराके निमित्त है।

(भाव निर्जराका स्वरूप)

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि॥१९४॥

परद्रव्यको भोगनेसे सुख अथवा दुःख नियमसे होता है उदयमें आये हुए उस सुख दुःखको अनुभवता है, भोगता है आस्वादता है फिर वह आस्वाद देकर कर्म द्रव्य झड़ जाता है। निर्जरा होने बाद फिर वह कर्म नहीं आता।

(ज्ञानकी सामर्थ्यका निरूपण)

जह विसमुवभुज्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी ॥१९५॥

जैसे वैद्य विषको भोगता हुआ भी मरणको नहीं प्राप्त होता, उसी तरह ज्ञानी पुद्गलकर्मके उदयको भोगता है तो भी बंधता नहीं है।

(वैराग्यकी सामर्थ्यका निरूपण)

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव ॥१९६॥

जैसे कोइ पुरुष मदिराको बिना प्रीतिसे पीताहुआ मतवाला नहीं होता, उसी तरह ज्ञानी भी द्रव्यके उपभोगमें तीव्र राग-रहित हुआ कर्मोंसे नहीं बंधता।

(ज्ञान वैराग्यकी सामर्थ्यका दृष्टान्तद्वारा निरूपण)

सेवंतोवि ण सेवइ असेवमाणोवि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होई ॥१९७॥

कोई तो विषयोंको सेवता हुआ भी नहीं सेवता है ऐसा कहा जाता है, और कोई नहीं सेवता हुआ भी सेवने वाला

कहा जाता है, जैसे किसी पुरुषके किसी कार्य करनेकी चेष्टा तो है अर्थात् उसने प्रकरणकी सब क्रियाओंको करता है तौ भी किसीका कराया हुआ करता है वह कार्य करनेवाला स्वामी है ऐसा नहीं कहा जाता।

(सम्यग्दृष्टिकी भेदविज्ञान-दशाका सामान्यसे वर्णन)

उदयविवागो विविहो कम्माणं वणिणओ जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥१९८॥

कर्मोंके उदयका रस जिनेश्वर देवने अनेक तरह का कहा है वे कर्मविपाक से हुए भाव मेरा स्वभाव नहीं है मैं तो एक ज्ञायकस्वभावस्वरूप हूँ।

(सम्यग्दृष्टिकी भेदविज्ञानदशाका विशेष रूपसे वर्णन)

पुग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमिक्को॥१९९॥

सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि यह राग पुद्गलकर्म है उसके विपाकका उदय है जो मेरे अनुभवमें रागरूप प्रीतिरूप आस्वाद होता है सो यह मेरा भाव नहीं है क्योंकि निश्चयकर मैं तो एक ज्ञायकभावस्वरूप हूँ।

(सम्यग्दृष्टिकी परिणतिका चित्रण)

एवं सम्मदिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणयसहावं।
उदयं कम्मविवागं य मुअदि तच्चं वियाणतो ॥२००॥

इसतरह सम्यग्दृष्टि अपनेको ज्ञायकस्वभाव जानता है और वस्तुके यथार्थस्वरूपको जानता हुआ कर्मके उदयको कर्मका विपाक जान उसे छोड़ता है ऐसी प्रवृत्ति करता है।

(रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता)

परमाणुमित्तयं पि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पा-णयं तु सव्वागमधरोवि ॥२०१॥

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥जुम्मं॥२०२॥

निश्चयकरके जिस जीवके रागादिकोंका लेशमात्र (अंशमात्र) भी मौजूद है तो वह जीव सब शास्त्रोंको पढ़ा हुआ होनेपर भी आत्माको नहीं जानता और आत्माको नहीं जानता हुआ परको भी नही जानता है, इसतरह जो जीव और अजीव दोनों पदार्थोंको भी नहीं जानता, वह सम्यग्दृष्टि कैसे होसकता है ? नहीं होसकता।

(आत्माके स्वपदका निरूपण)

आदह्मि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलंभंतं सहावेण ॥ २०३॥

आत्मामें परनिमित्तसे हुए अपदरूप द्रव्य भावरूप सभी भावोंको छोड़कर निश्चित स्थिर एक स्वभावकर ही ग्रहण होने योग्य इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर चैतन्यमात्र भावको हे भव्य ! तू जैसा है वैसा ग्रहण कर। वही अपना पद है।

(ज्ञान ही आत्माका स्वपद है)

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एकमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥ २०४॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये ज्ञानके भेद हैं ये ज्ञान पदको ही प्राप्त हैं सभी एक ज्ञान नामसे कहे जाते हैं सो यह शुद्धनयका विषय स्वरूप ज्ञान-सामान्य है इसलिये यही शुद्धनय है जिसको पाकर आत्मा मोक्ष पदको प्राप्त होता है ।

(ज्ञानकी प्राप्तिके विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं)

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहूवि ण लहंति ।
तं गिरह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥२०५॥

हे भव्य जो तू कर्मका सब तरफसे मोक्ष करना चाहता है तो उस निश्चित ज्ञानको ग्रहण कर क्योंकि ज्ञानगुणकर रहित बहुत पुरुष बहुत प्रकारके कर्म करते हैं तो भी इस ज्ञान-स्वरूप पदको नहीं प्राप्त होते ।

(ज्ञानमें निरत होनेका उपदेश)

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥ २०६॥

हे भव्य जीव ! तू इस ज्ञानमें सदाकाल रुचिसे लीन हो और इसमें हमेशा संतुष्ट हो अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है और इसी से तृप्त हो अन्य कुछ इच्छा नहीं रहे ऐसा अनुभवकर ऐसा करने से तेरे उत्तम सुख होगा ।

(ज्ञानीके केवल ज्ञानका ही परिग्रह होता है)

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो ॥ २०७ ॥

ऐसा कौन ज्ञानी पंडित है ? जो यह पर द्रव्य मेरा द्रव्य है ऐसा कहे, ज्ञानी तो न कहे। कैसा है ज्ञानी पंडित ? अपने आत्माको ही नियमसे अपना परिग्रह जानता हुआ प्रवर्तता है।

(ज्ञानीके परवस्तुका परिग्रह नहीं होता, इस बातका युक्ति द्वारा समर्थन)

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्माण परिग्गहो मज्झ ॥ २०८ ॥

ज्ञानी ऐसा जानता है कि जो मेरा परद्रव्य परिग्रह हो तो मैं भी अजीवपनेको प्राप्त हो जाऊं, जिस कारण मैं तो ज्ञाता ही हूं इस कारण मेरे कुछ भी परिग्रह नहीं है।

(ज्ञानीके अपरिग्रहरूप भावकी दृढ़ताका वर्णन)

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥२०९॥

ज्ञानी ऐसा विचारता है कि परद्रव्य छिद जाओ अथवा भिद जाओ अथवा कोई ले जाओ या नष्ट हो जाओ जिसतिसतरह से चली जाओ तो भी निश्चय कर मेरा परद्रव्य परिग्रह नहीं है

(ज्ञानीके धर्मका परिग्रह नहीं है)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होई ॥२१०॥

ज्ञानी परिग्रहसे रहित है इसलिये परिग्रहकी इच्छासे रहित है ऐसा कहा है इसी कारण धर्मको नहीं चाहता इसीलिये धर्मका परिग्रह नहीं है वह ज्ञानी धर्मका ज्ञायक ही है।

(ज्ञानीके अधर्मका भी परिग्रह नहीं है)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २११॥

ज्ञानी इच्छा रहित है इसलिये परिग्रहरहित कहा है इसीसे अधर्मकी इच्छा नहीं करता. वह ज्ञानी अधर्मका परिग्रह नहीं रखता, इसलिये वह उस अधर्मका ज्ञायक ही है।

(ज्ञानीके भोजनका भी परिग्रह नहीं है)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१२॥

इच्छारहित हो वही परिग्रहरहित है ऐसा कहा है और ज्ञानी भोजनको नहीं इच्छता इसलिये ज्ञानीके भोजनका परिग्रह नहीं है इस कारण वह ज्ञानी अशनका ज्ञायक ही है।

(ज्ञानीके पानका भी परिग्रह नहीं है)

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाणं।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१३॥

इच्छारहित है वह परिग्रहरहित कहा गया है और ज्ञानी जल आदि पीनेकी इच्छा नहीं रखता, इस कारण पानका परिग्रह ज्ञानीके नहीं है इसलिये वह ज्ञानी पानका ज्ञायक ही है।

(ज्ञानी विविध भावोंका ज्ञायक ही है, कर्त्ता या भोक्ता नहीं)

पमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥ २१४ ॥

इस प्रकारको आदि लेकर अनेक प्रकारके सब भावोंको ज्ञानी नहीं इच्छता। क्योंकि नियमसे आप ायकभाव है इसलिये सबमें निरालंब है।

(ज्ञानीके त्रिकालवर्त्ती भोगोंकी भी इच्छा नहीं है)

उप्पण्णोदयभोगो विओगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी ॥२१५॥

उत्पन्न हुआ वर्तमान कालके उदयका भोग उस ज्ञानीके हमेशा वह वियोगकी बुद्धिकर वर्तता है इसलिये परिग्रह नहीं है और आगामी कालमें होनेवाले उदयकी ज्ञानी वांछा नहीं करता इसलिये परिग्रह नहीं है। तथा अतीतकालका बीत ही चुका सो यह विना कहा सामर्थ्यसे ही जानना कि इसके परिग्रह नहीं है। गयेहुएकी वांछा ज्ञानीके कैसे हो ?

(ज्ञानी अनागत भोगोंकी इच्छा क्यों नहीं करता ?)

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखइ कयावि ॥२१६॥

जो अनुभव करनेवाला भाव अर्थात् वेदकभाव. और जो अनुभव करने योग्य भाव अर्थात् वेद्यभाव इस तरह वेदक और वेद्य ये दोनों भाव आत्माके होते हैं सो क्रमसे होते हैं एक समयमें नहीं होते। ये दोनों ही समय समयमें विनस जाते हैं।

आत्मा दोनों भावोंमें नित्य है इसलिये ज्ञानी आत्मा दोनों भावोंका ज्ञायक (जाननेवाला) ही है इन दोनों भावोंको ज्ञानी कदाचित् भी नहीं चाहता।

[ज्ञानीके संसार और शरीर-विषयक भोगोंमें राग नहीं है]

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स ।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ २१७ ॥

बंध और उपभोगके निमित्त जो अध्यवसानके उदय हैं वे संसारविषयक और देहके विषय हैं उनमें ज्ञानीके राग नहीं उपजता।

[ज्ञानी किसी भी परद्रव्यमें लिप्त नहीं होता, पर अज्ञानी लिप्त होता है, इस बातका दृष्टान्तद्वारा वर्णन]

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥२१८॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥२१९॥

ज्ञानी सब द्रव्योंमें रागका छोड़नेवाला है वह कर्मके मध्यमें प्राप्त हो रहा है तौभी कर्मरूपी रजसे नहीं लिप्त होता, जैसे कीचड़में पड़ा हुआ सोना, और अज्ञानी सब द्रव्योंमें रागी है इसलिये कर्मके मध्यको प्राप्त हुआ, कर्मरजकर लिप्त होता है जैसे कीचमें पड़ा हुआ लोहा अर्थात् जैसे लोहेके काई लग जाती है वैसे।

[ज्ञानीके शंख-दृष्टान्त द्वाराबंधाभावका निरूपण]

भुंजंतस्सवि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्हगो काउं ॥२२०॥

तह णाणिस्स विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजंतस्सवि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥ २२१ ॥

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥ २२२ ॥

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तय पजहिऊण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥२२३॥

जैसे शंख अनेक प्रकारके सचित्त अचित्त मिश्रित द्रव्योंको भक्षण करता है तौभी उस शंखका सपेदपना काला करनेको नहीं समर्थ हो सकते उसी तरह अनेक प्रकारके सचित्तअचित्त मिश्रित द्रव्योंको भोगनेवाले ज्ञानीके ज्ञानके भी अज्ञानपना करनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। और जैसे वही शंख जिस समय अपने उस श्वेत स्वभावको छोड़कर कृष्णभावको प्राप्त होता है, तब सफेदपनको छोड़ देता है उसी तरह ज्ञानी भी निश्चयकर जब अपने उस ज्ञानस्वभावको छोड़कर अज्ञानकर परिणमता है उस समय अज्ञानपनेको प्राप्त होता है।

[सरागभावसे बन्ध और वीतरागभावसे मोक्ष होता है इस बातका दृष्टान्त द्वारा समर्थन]

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवए रायं।
तो सोवि देदि राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥ २२४॥

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।
तो सोवि देह कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥

जह पुण सो चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं।
तो सो ण देइ राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥२२६॥

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवए ण कम्मरयं।
तो सो ण देइ कम्मो विवहे भोए सुहुप्पाए ॥२२७॥

जैसे इस लोकमें कोई पुरुष आजीविकाके लिये राजाको सेवे तो वह राजा भी उसको सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको देता है इसी तरह जीवनामा पुरुष सुखके लिये कर्मरूपी रजको सेवन करता है तो वह कर्म भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको देता है और जैसे वही पुरुष आजीविकाके लिये राजाको नहीं सेवे तो वह राजा भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको नहीं देता है इसी तरह सम्यग्दृष्टि विषयोंके लिये कर्मरूपी रजको नहीं सेवता, तो वह कर्म भी उसे सुखके उपजानेवाले अनेक प्रकारके भोगोंको नहीं देता।

(सम्यग्दृष्टि जीव सदा निःशंक और निर्भय रहता है)

सम्मद्दिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥२२८॥

सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते हैं इसीलिये निर्भय हैं क्योंकि सप्तभयकर रहित हैं इसीलिये निःशंक हैं ।

(निःशंक जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २२६ ॥

जो आत्मा कर्मबंधके कारण मोहके करनेवाले मिथ्यात्वादि भावरूप चारों पादोंको निःशंक हुआ काटता है वह आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये ।

(सम्यग्दृष्टि जीव सर्वत्र आकांक्षा-रहित है)

जो दुण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३०॥

जो आत्मा कर्मोंके फलोंमें तथा सब धर्मोंमें वांछा नहीं करता, वह आत्मा निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना ।

(जुगुप्सा-रहित जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

जो जीव सभी वस्तुके धर्मोंमें ग्लानि नहीं करता वह जीव

निश्चयकर विचिकित्सा दोषरहित सम्यग्दृष्टि जानना।

(अमूढ़दृष्टि जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

जो हवई असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३२॥

जो जीव सब भावोंमें मूढ़ नहीं होता यथार्थ दृष्टिरखता है वह ज्ञानी जीव निश्चयकर अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना।

(उपगूहन धर्मधारी जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३३॥

जो जीव सिद्धोंकी भक्तिकर सहित हो और अन्य वस्तुके सब धर्मोंका गोपनेवाला हो वह उपगूहनधारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

(स्व-धर्ममें स्थिर करनेवाला जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

उम्मंगं गच्छंतं सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३४॥

जो जीव उन्मार्ग चलते हुए अपने आत्माको भी मार्गमें स्थापन करता है वह ज्ञानी स्थितिकरण गुण सहित सम्यग्दृष्टि जानना।

(वात्सल्य-धारक जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह साहूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३५॥

जो जीव मोक्षमार्गमें स्थित आचार्य उपाध्याय साधुपद सहित आत्मामें अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें वात्सल्यभाव करता है वह वत्सल भावकर सहित सम्यग्दृष्टि जानना।

(ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला जीव ही सम्यग्दृष्टि है)

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २३६ ॥

जो जीव विद्यारूपी रथमें चढ़ा मनरूपी रथके चलनेके मार्गमें भ्रमण करता है वह ज्ञानी जिनेश्वरके ज्ञानकी प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना।

सप्तमो निर्जराधिकारः समाप्तः



अथ बंधाधिकारः

(बंधके कारणका दृष्टान्तपूर्वक निरूपण)

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥ २३७ ॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २३८॥
उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबंधो ॥२३९॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं॥ २४०॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु।
रायाई उवओगे कुव्वंतो लिप्पइ रयेण॥ २४१॥

प्रगटकर कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष अपनी देहमें तैलादि लगाकर बहुत धूलीवाली जगहमें स्थित होकर हथियारोंसे व्यायाम करता है वहां ताड़वृक्ष, केलेका वृक्ष तथा बांसके पिंड इत्यादिकोंको छेदता है भेदता है और सचित्त व अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है। इस प्रकार नाना प्रकारके करणोंकर उपघात करनेवाले उस पुरुषके निश्चयसे विचारो कि रजका बंध किस कारणसे हुआ है ? जो उस मनुष्यमें तेल आदिका सचिक्कण भाव है उससे उसके रजका बंध लगता है यह निश्चयसे जानना। शेष कायकी चेष्टाओंसे रजका बंध नहीं है इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव बहुत प्रकारकी चेष्टाओंमें वर्तमान है वह अपने उपयोगमें रागादि भावोंको करता हुआ कर्मरूप रजकर लिप्त होता है बंधता है।

(रागके अभावसे ही सम्यग्दृष्टि जीव कर्म-बन्धसे अलिप्त रहता है)

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं॥२४२॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं॥२४३॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो ण रयबंधो ॥२४४॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं ॥ २४५ ॥

एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥ २४६ ॥

जैसे फिर वोही मनुष्य तैलादिक सब चिकनी वस्तुको दूर करके बहुत रजवाले स्थानमें शस्त्रोंका अभ्यास करता है, तालवृक्षकी जड़को केलेके वृक्षको तथा बांसके विड़ेको छेदन भेदन करता है और सचित्त अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है। वहां उपघात करनेवाले उसके नाना प्रकारके करणोंकर निश्चयसे जानना कि रजका बंध किस कारणसे नहीं होता ? उस पुरुषके जो चिक्कनता है उससे उसके रजका बंधना निश्चयसे जानना चाहिये, शेष कायकी चेष्टाओंसे रजका बंध नहीं होता । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि बहुत तरहके योगोंमें वर्तमान है वह उपयोगमें रागादिकोंको नहीं करता इसलिये कर्मरजकर नहीं लिप्त होता ।

(ज्ञानी और अज्ञानीके भावोंका अन्तर)

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२४७॥

जो पुरुष ऐसा मानता है कि मैं पर जीवको मारता हूँ और

परजीवोंकर मैं मारा जाता हूं पर मुझे मारते हैं वह पुरुष मोही है, अज्ञानी है और इससे विपरीत ज्ञानी है ऐसा नहीं मानता।

(मैं परको मारता हूँ, ऐसा अध्यवसाय ही अज्ञान है)

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पणत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं ॥२४८॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं न हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥ २४९॥

जीवोंके मरण है वह आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा जिनेश्वर देवने कहा है सो हे भाई !तू मानता है कि मैं परजीवको मारता हूं यह अज्ञान है क्योंकि उन परजीवोंका आयुकर्म तू नहीं हरता, तो तूने उनका मरण कैसे किया ? तथा जीवोंका मरण आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा जिनेश्वरदेवने कहा है परन्तु हे भाई तू ऐसा मानता है कि मैं परजीवोंकर मारा जाता हूं यह मानना तेरा अज्ञान है क्योंकि परजीव तेरा आयुकर्म नहीं हरते इसलिये उन्होंने तेरा मरण कैसे किया।

(मैं परको जिलाता हूं, ऐसा अध्यवसाय भी अज्ञान है)

जो मण्णदि जीवेमिय जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २५०॥

जो जीव ऐसा मानता है कि मैं परजीवोंको जीवित करता हूँ और परजीव भी मुझे जीवित करते हैं वह मूढ़ (मोह) है, अज्ञानी है परन्तु ज्ञानी इससे विपरीत है ऐसा नहीं मानता इससे उलटा मानता है।

(परको जिलाने मारनेकी कल्पना करना अज्ञान है)

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं ॥

जीव अपनी आयुके उदयसे जीता है ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं सो हे भाई ! तू परजीवको आयुकर्म नहीं देता तो तूने उन परजीवोंका जीवित कैसे किया ? और जीव अपने आयुकर्मके उदयसे जीता है ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं सो हे भाई परजीव तुझे आयुकर्म नहीं देता, तो उन्होंने तेरा जीवन कैसे किया ?

(परको सुख-दुख देनेकी कल्पना करना भी अज्ञान है)

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२५३॥

जो जीव ऐसा मानता है कि मैं अपनेकर परजीवोंको दुःखी सुखी करता हूं वह जीव मोही है, अज्ञानी है, और ज्ञानी इससे उलटा मानता है ।

[सुख-दुखका कारण कर्म है, अन्य कोई नहीं]

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कया ते ॥२५४
कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंदि जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं ॥२५५

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥२५६॥

सब जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी होते हैं जो ऐसा है तो हे भाई ! तू उन जीवोंको कर्म तो नहीं देता परन्तु तूने वे दुःखी सुखी कैसे किये ? सब जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी होते हैं जो ऐसे हैं तो हे भाई वे जीव तुझको कर्म तो नहीं देते उन्होंने दुःखी, तू कैसे किया, तथा सभी जीव अपने कर्मके उदयसे दुःखी सुखी जो होते हैं सो हे भाई ऐसा है तो वे जीव कर्मोंको तुझे दे नहीं सकते तो उन्होंने, तू सुखी कैसे किया ।

(परको सुख-दुखका दाता माननेवाला जीव मिथ्यादृष्टि है)

जो मरइ जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥२५७॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सोवि य कम्मोदयेण चेव खलु ।
तह्मा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥२५८॥

जो मरता है और जो दुःखी होता है वह सब कर्मके उदयकर होता है इसलिये तेरा "मैं मारा मैं दुःखी किया गया" ऐसा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है । तथा जो नहीं मरता और न दुःखी होता, वह भी कर्मके उदयकर ही होता है इसलिये तेरा यह अभिप्राय है "कि मैं मारा नहीं गया और न दुःखी किया" ऐसा भी अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ? मिथ्या ही है ।

(परको सुख-दुख देनेकी कल्पना बुद्धि ही कर्मका बन्ध करातो है)

एसा दु जा मई दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
एसा दे मूढमई सुहासुह बंधए कम्मं ॥ २५९॥

हे आत्मन् तेरी जो यह बुद्धि है कि मैं जीवोंको सुखी दुःखी करता हूं, यह तेरी मूढ़बुद्धि मोहस्वरूप बुद्धि ही शुभ अशुभ कर्मोंको बांधती है ।

(उपर्युक्त कथनका स्पष्टीकरण)

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
त पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६०॥
मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते ।
त पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २६१ ॥

हे आत्मन् तेरा जो यह अभिप्राय हैं कि मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूं वह ही अभिप्राय पापका बंधक है तथा पुण्यका बंधक है । अथवा मैं जीवोंको मारता हूं अथवा जिवाता हूँ जो ऐसा तेरा अभिप्राय है वह भी पापका बंधक है अथवा पुण्यका बंधक है ।

(अध्यवसाय ही कर्म-बन्धका कारण है)

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २६२ ॥

निश्चय नयका यह पक्ष है कि जीवोंको मारो अथवा मत

मारो, यह जीवोंके कर्मबंध अध्यवसायकर ही होता है यह ही बंधका संक्षेप है।

(शुभ-अशुभ अध्यवसाय पुण्य-पाप बन्धका कारण है)

एवमलिये अदत्ते अवंभचेरे परिग्गहे चेव।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पावं ॥२६३॥

तहवि य सच्चे दत्ते वंभे अपरिग्गहत्तणे चेव।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झए पुण्णं ॥२६४॥

पहले हिंसाका अध्यवसाय कहा था उसी तरह असत्य चोरी आदिसे विना दिये परधनका लेना, स्त्रीका संसर्ग, धन-धान्यादिक इनमें जो अध्यवसान किया जाता है उससे तो पापका बंध होता है और उसी तरह सत्यमें दिया हुआ लेनेमें ब्रह्मचर्यमें और अपरिग्रहमें जो अध्यवसान किया जाता है उससे पुण्यका बंध होता है।

(अध्यवसाय ही बन्धका कारण है, पर-पदार्थ नहीं)

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु वंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥२६५॥

जीवोंके जो अध्यवसान है वह वस्तुको अवलंबन करके होता है। तथा वस्तुसे बंध नहीं है, अध्यवसानकर ही बंध है।

(परको सुख-दुख देनेकी बुद्धि ही मिथ्या है)

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि।
जा एसा मूढमई णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥२६६॥

हे भाई तेरी जो ऐसी मूढ़बुद्धि है कि मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूं बंधाता हूं और छुड़ाता हूँ वह मोहस्वरूप बुद्धि निरर्थक है जिसका विषय सत्यार्थ नहीं है इसलिये निश्चयकर मिथ्या है।

(परको सुख-दुख देनेकी कल्पना करना व्यर्थ है)

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करोसि तुमं ॥२६७॥

हे भाई! जो जीव अध्यवसानके निमित्तसे कर्मसे बंधते हैं और मोक्षमार्गमें तिष्ठे हुए कर्मकर छूटते हैं ऐसा जब है तो तू क्या करेगा? तेरा तो बांधने छोड़नेका अभिप्राय विफल हुआ।

(रागादिसे मोहित हुआ जीव परद्रव्यको आत्मास्वरूप समझता है)

सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥२६८॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च।
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥ २६९॥

जीव अध्यवसानकर अपने सब तिर्यंच नारक देव मनुष्य सभी पर्यायोंको करता है और अनेक प्रकारके पुण्य-पापोंको अपने करता है तथा धर्म-अधर्म जीव-अजीव और लोक-अलोक इन सभीको जीव अध्यवसानकर आत्मस्वरूप करता है।

(अध्यवसाय-रहित साधु कर्मसे लिप्त नहीं होता)

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥२७०॥

ये पूर्वोक्त अध्यवसाय तथा इस तरहके अन्य भी अध्यवसान जिनके नहीं हैं वे मुनिराज अशुभ अथवा शुभ कर्मसे नहीं लिप्त होते।

(अध्यवसायके पर्यायवाचक नाम)

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥२७१॥

बुद्धि, व्यवसाय और अध्यवसान और मति,विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम ये सब एकार्थ ही हैं नामभेद है इनका अर्थ जुदा नहीं है।

(व्यवहारनय निश्चयनयके द्वारा प्रतिषिद्ध है)

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥२७२॥

पूर्वकथित रीतिसे अध्यवसानरूप व्यवहारनय है वह निश्चयनयसे निषेधरूप जानो जो मुनिराज निश्चयके आश्रित हैं वे मोक्षको पाते हैं।

(अभव्य व्रत-शीलादिको पालता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है)

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥

व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप जिनेश्वर देवने कहे हैं उनको

करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

(अभव्यके एकादशांगका ज्ञान भी व्यर्थ है)

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥२७४॥

जो अभव्य जीव शास्त्रका पाठ भी पढ़ता है परन्तु मोक्ष-तत्त्वका श्रद्धान नहीं करता, तो ज्ञानका श्रद्धान नहीं करनेवाले उस अभव्यका शास्त्र पढ़ना लाभ नहीं करता।

(अभव्यके धर्मका श्रद्धान भोगके लिए है, कर्मक्षयके लिए नहीं)

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥२७५॥

वह अभव्य जीव धर्मको श्रद्धान करता है प्रतीति करता है रुचि करता है और स्पर्शता है वह संसारभोगके निमित्त जो धर्म है उसीको श्रद्धान आदि करता है परन्तु कर्मक्षय होनेका निमित्तरूप धर्मका श्रद्धान आदि नहीं करता।

(व्यवहार और निश्चयनयसे ज्ञान-दर्शनादिका प्रतिपादन)

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवणिकं च तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥ २७६॥
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥२७७॥

आचारांग आदि शास्त्र तो ज्ञान है तथा जीवादि तत्त्व हैं वे

दर्शन जानना और छह कायके जीवोंकी रक्षा चारित्र है इस तरह तो व्यवहारनय कहता है और निश्चयकर मेरा आत्मा ही ज्ञान है मेरा आत्मा ही दर्शन और चारित्र है मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है मेरा आत्मा ही संवर और योग (समाधि-ध्यान) है। ऐसे निश्चयनय कहता है।

(ज्ञानीके रागादिकी परिणति अन्य-निमित्तक है, इस बातका दृष्टान्तद्वारा स्पष्टीकरण)

जह फलिहमणी सुद्धो ण सय परिणमइ रायमाईहिं।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥ २७८॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥ २७९ ॥

जैसे स्फटिकमणि आप शुद्ध है वह ललाई आदि रंगस्वरूप आप तो नहीं परिणमती परन्तु वह दूसरे लाल काले आदि द्रव्योंसे ललाई आदि रंगस्वरूप परणमती है इसी प्रकार ज्ञानी आप शुद्ध है वह रागादि भावोंसे आप तो नहीं परिणमता, परन्तु अन्य रागादि दोषोंसे रागादिरूप किया जाता है।

(ज्ञानी रागादि भावोंका कर्त्ता नहीं है)

ण य रायदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं ॥ २८०॥

ज्ञानी आप ही अपने राग-द्वेष-मोह तथा कषायभाव नहीं करता, इस कारण वह ज्ञानी उन भावोंका करनेवाला (कर्ता) नहीं है।

(अज्ञानी ही पुनः पुनः रागादिको बांधता है)

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदि पुणोवि ॥ २८१ ॥

राग-द्वेष और कषायकर्म इनके होने पर जो भाव होते हैं उनकर परिणमता हुआ अज्ञानी रागादिकोंको बार बार बांधता है।

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रायाई बंधदे चेदा ॥ २८२ ॥

राग द्वेष और कषायकर्मोंके होने पर जो भाव होते हैं उनकर परिणमता हुआ आत्मा रागादिकोंको बांधता है।

(आत्मा रागादिका अकारक है)

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विएणेयं।
एएणुवएसेण य अकारओ वरिणओ चेया ॥ २८३ ॥
अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपचखाणं।
एएणुवएसेण य अकारओ वरिणओ चेया ॥ २८४ ॥
जावं अपडिक्कमणं अपच्चखाणं च दव्वभावाणं।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होई णायव्वो ॥२८५॥

अप्रतिक्रमण दो प्रकारका जानना, उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो प्रकारका जानना, इस उपदेशकर आत्मा अकारक कहा है। अप्रतिक्रमण दो प्रकार है एक तो द्रव्यमें दूसरा भावमें

उसी तरह अप्रत्याख्यान भी दो तरहका है एक द्रव्यमें एक भावमें इस उपदेशकर आत्मा अकारक कहा है। जब तक आत्मा द्रव्य और भावमें अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करता है तब तक वह आत्मा कर्ता होता है ऐसा जानना।

(द्रव्य-भावके निमित्त-नैमित्तिकपनेका उदाहरण)

आधाकम्माईया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वई णाणी परदव्वगुणा उ जे णिच्चं॥ २८६॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेयणं उत्तं॥ २८७॥

अधःकर्मको आदि लेकर जो ये पुद्गलद्रव्यके दोष हैं उनको ज्ञानी कैसे करे? क्योंकि ये सदा ही पुद्गलद्रव्यके गुण हैं और यह अधःकर्म व उद्देशिक हैं वे पुद्गलमय द्रव्य हैं उनको यह ज्ञानी जानता है कि जो सदा अचेतन कहे हैं वे मेरे किये कैसे हो सकते हैं!

अष्टमो बंधाधिकारः समाप्तः

—०※०—

अथ मोक्षाधिकारः

(केवल कर्म-बंधके ज्ञानसे मोक्ष नहीं मिलता)

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयह्मि चिरकालपडिवद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स॥२८८॥

जइ णवि कुणइ च्छेदं ण मुच्चए तेण बंधणवसो सं ।
कालेण उ बहुएणवि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥२८९॥

इय कम्मबंधणाणं पएसठिइपयडिमेवमणुभागं ।
जाणंतोवि ण मुचइ मुचइ सो चेव जइ सुद्धो ॥२९०॥

अहो देखो जैसे कोई पुरुष बंधनमें बहुत कालका बंधाहुआ उस बंधनके तीव्रमंद (गाढे ढीले) स्वभावको और कालको जानता है कि इतने कालका बंध है। जो उस बंधनको आप काटता नहीं है तो उस बंधनके वशहुआ ही रहता है उसकर छूटता नहीं है ऐसा वह पुरुष बहुत कालमें भी उस बंधसे छूटनेरूप मोक्षको नहीं पाता, उसी प्रकार जो पुरुष कर्मके बंधनोंके प्रदेश स्थिति प्रकृति और अनुभाग ये भेद हैं ऐसा जानता है तो भी वह कर्मसे नहीं छूटता, जो आप रागादिकको दूर कर शुद्ध हो, वही छूटता है।

(कर्मबंधकी चिन्तासे भी मोक्ष नहीं मिलता)

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावइ विमोक्खं ॥२९१॥

जैसे कोई बंधनकर बंधा हुआ पुरुष उन बंधोंको विचारता हुआ (उसका सोच करता हुआ) भी मोक्षको नहीं पाता, उसी तरह कर्मबंधकी चिन्ता करता हुआ जीव भी मोक्षको नहीं पाता।

(किन्तु कर्म-बंधके छेदनेसे ही मोक्ष मिलता है)

जह बंधे छित्तूण य बंधणवद्धो उ पावइ विमोक्खं।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥२९२॥

जैसे बंधनसे बंधा पुरुष बंधनको छेदकर मोक्षको पाता है उसीतरह कर्मके बंधनको छेदकर जीव मोक्षको पाता है।

(कर्म-बन्धसे विरक्त पुरुष ही मोक्ष पाता है)

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणई ॥२९३॥

बंधोंका स्वभाव और आत्माका स्वभाव जानकर जो पुरुष बंधोंमें विरक्त होता है वह पुरुष कर्मोंका मोक्ष करता है।

(प्रज्ञारूप छैनीके द्वारा जीव और कर्म-बन्धको पृथक् करनेका उपदेश)

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥२९४॥

जीव और बंध ये दोनों निश्चित अपने २ लक्षणोंकर बुद्धि-रूपी छैनीसे इसतरह छेदने चाहिये कि जिस तरह छेदेहुए नानापनको प्राप्त हो जायं अर्थात् जुदे जुदे हो जायं।

(शुद्ध आत्माके ग्रहण करनेका उपदेश)

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेएदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥२९५॥

जीव और बंध इन दोनोंको निश्चित अपने २ लक्षणोंकर

इसतरह भिन्न करना कि बंध तो छिदकर भिन्न हो जाय, और आत्मा ग्रहण कियाजाय।

(प्रज्ञाके द्वारा आत्माके ग्रहण करनेका उपदेश)

कह सो घिप्पइ अप्पा पएणाए सो उ घिप्पए अप्पा।
जह पएणाइ विहत्तो तह पएणाएव घित्तव्वो ॥२९६॥

शिष्य पूछता है कि वह शुद्धात्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है? आचार्य उत्तर कहते हैं कि वह शुद्धात्मा प्रज्ञाकर ही ग्रहण किया जाता है। जिस तरह पहले प्रज्ञासे भिन्न किया उसीतरह प्रज्ञासे ही ग्रहण करना।

(प्रज्ञाके द्वारा स्व-परके पृथक् पृथक् जाननेका उपदेश)

पएणाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९७॥

जो चेतनस्वरूप आत्मा है निश्चयसे वह मैं हूं इसतरह प्रज्ञाकर ग्रहण करने योग्य है और अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं इसप्रकार आत्माको ग्रहण करना (जानना) चाहिये।

(प्रज्ञाके द्वारा शुद्ध आत्माके ग्रहण करनेका विशेष उपदेश)

पएणाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयओ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९८॥
पएणाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥युग्मं॥२९९॥

प्रज्ञाकर ऐसे ग्रहण करना कि जो देखनेवाला है वह तो निश्चयसे मैं हूं अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं ऐसा जानना। तथा प्रज्ञाकर ही ग्रहण करना कि जो जाननेवाला है वह तो निश्चयसे मैं हूं अवशेष जो भाव हैं वे मुझसे पर हैं ऐसा जानना।

(चिन्मय भाव उपादेय और परभाव हेय हैं)

को णाम भणिज्ज बुहो णाउं सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥३००॥

ज्ञानी अपने स्वरूपको जान और सभी परके भावोंको जानकर ये मेरे हैं ऐसा बचन कौन बुद्धिमान् कहेगा ? ज्ञानी पंडित तो नहीं कह सकता। कैसा है ज्ञानी ? अपने आत्माको शुद्ध जाननेवाला है।

(अपराधी सशंक रहता है, पर निरपराधी निःशंक विचरता है)

थेयाई अवराहे कुव्वादि जो सो उ संकिदो भमई।
मा वज्झेज्जं केणवि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥३०१॥

जो ण कुणइ अवराहे सो णिस्संको दु जणवए भमदि।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥३०२॥

एवंहि मावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेया।
जइ पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥३०३॥

जो पुरुष चोरीआदि अपराधोंको करता है वह ऐसी शंका-सहित हुआ भ्रमता है कि लोकमें विचरता हुआ मैं चोर ऐसा

मालूम होनेपर किसीसे पकड़ा (बंधा) न जाऊं। जो कोई भी अपराध नहीं करता, वह पुरुष देशमें निशंक भ्रमता है उसको बंधनेकी चिन्ता कभी भी नहीं उपजती (होती) ऐसे मैं जो अपराधसहित हूं तो बंधूगा ऐसी शंकायुक्त आत्मा होता है और जो निरपराध हूं तो मैं निःशंक हूं कि नहीं बंधूगा। ऐसे ज्ञानी विचारता है।

(अपराध क्या वस्तु है ?)

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं ।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥३०४॥

जो पुण णिरवराधो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ ।
आराहणए णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो ॥३०४॥

संसिद्ध राध सिद्ध साधित और आराधित ये शब्द एकार्थ हैं। इसलिये जो आत्मा राधसे रहित हो, वह आत्मा अपराध है और जो आत्मा अपराधी नहीं है वह शंकारहित है और अपनेको मैं हूं ऐसा जानता हुआ आराधनाकर हमेशा वर्तता है।

(विषकुम्भ और अमृतकुम्भका वर्णन)

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥३०६॥
अपडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदा गरहा सोही अमयकुंभो ॥३०७॥

प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा,

गर्हा और शुद्धि इसतरह आठ प्रकार विषकुम्भ है; क्योंकि इसमें कर्तापनकी बुद्धि संभवती है और अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अपरिहार अधारणा अनिवृत्ति अनिंदा अगर्हा और अशुद्धि इसतरह आठ प्रकार अमृतकुंभ हैं क्योंकि, यहां कर्तापनाका निषेध है कुछ भी नहीं करना इसलिये बंधसे रहित है।

मोक्षाधिकारः समाप्तः



अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

(आत्माके अकर्तापनको दृष्टान्तपूर्वक सिद्धि)

दविथं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥३०८॥

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥३०९॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होइ ॥३१०॥

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पंजंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥३११॥

जो द्रव्य जिन अपने गुणोंकर उपजता है वह उन गुणोंकर

अन्य नहीं जानना उन गुणमय ही है जैसे सुवर्ण अपने कटक कडे आदि पर्यायोंकर लोगमें अन्य नहीं है-कटकादि है वह सुवर्ण ही है उसीतरह द्रव्य जानना। उसीतरह जीव अजीवके जो परिणाम सूत्रमें कहे हैं वे द्रव्य ही हैं। जिसकारण वह आत्मा किसीसे भी नहीं उत्पन्न हुआ है इससे किसीका किया-हुआ कार्य नहीं है और किसी अन्यको भी उत्पन्न नहीं करता, इसलिये वह किसीका कारण भी नहीं है। क्योंकि कर्मको आश्रयकर तो कर्ता होता है और कर्ताको आश्रयकर कर्म उत्पन्न होते हैं ऐसा नियम है अन्यतरह कर्ता कर्मकी सिद्धि नहीं देखी जाती।

(कर्म-बन्ध अज्ञानका माहात्म्य है)

चेया उ पयडीयट्ठ उप्पजइ विणस्सइ।
पयडीवि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥३१२॥

एवं बंधो उ दुण्हंपि अण्णोण्णप्पच्चया हवे।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥३१३॥

चेतनेवाला आत्मा तो ज्ञानावरणादि कर्मकी प्रकृतियोंके निमित्तसे उत्पन्न होता है तथा विनसता है और प्रकृति भी उस चेतनेवाले आत्माके लिये उत्पन्न होती है तथा विनाशको प्राप्त होती है। आत्माके परिणामोंके निमित्तसे उसीतरह परिणमती है। इसतरह दोनों आत्मा और प्रकृतिके परस्पर निमित्तसे बंध होता है और उस बंधकर संसार उत्पन्न होता है।

(आत्मा जब तक रागादि नहीं छोड़ता, तब तक अज्ञानी और असंयमी ही है)

जा एसो पयडीयट्ठं चेया णेव विमुंचए।
अयाणओ हवे ताव मिच्छाइट्ठो असंजओ ॥३१४॥

जया विमुंचए चेया कम्मप्फलमणंतयं।
तया विमुत्तो हवइ जाणओ पासओ मुणी ॥३१५॥

यह आत्मा जबतक प्रकृतिके निमित्तसे उपजना विनशना नहीं छोडता तबतक अज्ञानी हुआ मिथ्यादृष्टि असंयम होता है। और जब आत्मा अनंत कर्मफलको छोड़ देता है उस-समय बंधसे रहित हुआ ज्ञाता द्रष्टा संयमी होता है।

(कर्म-फल भोगनेके विषयमें ज्ञानी और अज्ञानी का भेद)

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिओ दु वेदेइ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥३१६॥

अज्ञानी कर्मके फलको प्रकृतिके स्वभावमें तिष्ठा हुआ भोगता है और ज्ञानी उदयमें आये हुए कर्मके फलको जानता है परन्तु भोगता नहीं है।

(अज्ञानी शास्त्राभ्यास करने पर भी नियमसे कर्म-फलका वेदक ही रहता है)

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा हुंति ॥३१७॥

अभव्य अच्छी तरह अभ्यासकर शास्त्रोंको पढ़ता हुआ भी कर्मके उदयस्वभावको नहीं छोड़ता अर्थात् प्रकृति नहीं बदलती जैसे सर्प गुड़सहित दूधको पीते हुए भी निर्विष नहीं होते।

(किन्तु ज्ञानी सदाकाल अवेदक ही रहता है)

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ ।
महुरं कडुयं वहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥३१८॥

ज्ञानी वैराग्यको प्राप्त हुआ कर्मके फलको जानता है कि जो मीठा तथा कड़वा इत्यादि अनेक प्रकार है इस कारण वह भोक्ता नहीं है ।

(ज्ञानी कर्मोंका कर्त्ता, भोक्ता नहीं, किन्तु ज्ञाता ही है)

णवि कुव्वइ णवि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं ।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥३१९॥

ज्ञानी बहुत प्रकारके कर्मोंको न तो कर्ता है और न भोगता है परन्तु कर्मके बंधको और कर्मके फल पुण्य-पापोंको जानता ही है ।

(उपर्युक्त कथनका दृष्टान्तद्वारा समर्थन)

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

जैसे नेत्र है वह देखने योग्य पदार्थको देखता ही है उनका कर्ता भोक्ता नहीं है उसी तरह ज्ञान भी बंध मोक्ष कर्मका उदय और निर्जराको जानता ही है करनेवाला भोगनेवाला नहीं है ।

(ईश्वरको जगत्कर्त्ता और आत्माको कर्म-कर्त्ता माननेवालोंमें कोई भेद नहीं है)

लोयस्स कुणइ विहणू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणंपि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥३२१॥

लोगसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसइ विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाणवि अप्पओ कुणइ ॥३२२॥
एवं ण कोवि मोक्खो दीसइ लोयसमणाण दोण्हंपि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए ॥३२३॥

देव नारक तिर्यंच मनुष्य प्राणियोंको लोकके तो विष्णु परमात्मा करता है ऐसा मंतव्य है इसतरह जो यतियोंके भी ऐसा मानना हो कि छह कायके जीवोंको आत्मा करता है तो लोक और यतियोंका एक सिद्धांत ठहरा तो कुछ विशेषता नहीं दीखता। क्योंकि लोकके जैसे विष्णु करता है उसतरह श्रमणोंके भी आत्मा करता है इस तरह कर्ताके माननेमें दोनों समान हुए इस तरह लोक और श्रमण इन दोनोंमेंसे कोई भी मोक्ष हुआ नहीं दीखता क्योंकि जो देवमनुष्य-असुरसहित लोकोंको जीवोंको नित्य दोनों ही करते हुए प्रवर्तते हैं उनके मोक्ष कैसा।

(परद्रव्यको अपना माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं)

ववहारभासिएण उ परदव्वं मम भणंति अविदियत्था।
जाणंति णिच्छयेण उ ण य मह परमाणुमिच्चमवि किंचि ३२४
जह कोवि णरो जंपइ अह्मं गामविसयणयररट्ठं।
ण य होंति ताणि तस्स उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ॥३२
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवइ एसो।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥३२६॥

तह्मा ण मेत्ति णिच्चा दोह्ंवि एयाण कत्तविवसायं ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहियाणं ॥३२७॥

जिन्होंने पदार्थका स्वरूप नहीं जाना है वे पुरुष व्यवहारके कहे हुए वचनोंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है और जो निश्चयकर पदार्थोंका स्वरूप जानते हैं वे कहते हैं कि परमाणु-मात्र भी कोई मेरा नहीं है । व्यवहारका कहना ऐसा है कि जैसे कोई पुरुष कहे कि हमारा ग्राम है देश है नगर है और मेरे राजाका देश है वहां निश्चयसे विचारा जाय तो वे ग्राम आदिक उसके नहीं हैं वह आत्मा मोहसे मेरा मेरा ऐसा कहता है । इसी तरह जो ज्ञानी परद्रव्यको परद्रव्य जानता हुआ परद्रव्य मेरा है ऐसा अपनेको परद्रव्यमय करता है वह निःसन्देह मिथ्यादृष्टि होता है । इसलिये ज्ञानी परद्रव्य मेरा नहीं हैं ऐसा जानकर परद्रव्यमें इन लौकिकजन तथा मुनियोंके कर्तापनके व्यापारको जानता हुआ ऐसा जानता है कि ये सम्यग्दर्शनकररहित हैं ।

(मिथ्यात्वभाव क्या वस्तु है, इस बातका सयुक्तिक विचार)

मिच्छत्तं जइ पयडी मिच्छाइट्ठी करेइ अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णाणु कारगो पत्तो ॥३२८॥

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणइ मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छाइट्ठी ण पुण जीवो ॥३२९॥

अह जीवो पयडो तह पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तह्मा दोहि यंकद तं दोण्णिवि भुंजंति तस्स फलं ॥३३०॥

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।
पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥३३१॥

जीवके जो मिथ्यात्वभाव होता है उसको विचारते हैं कि निश्चयसे यह कौन करता है ? वहां जो मिथ्यात्वनामा मोहकर्मकी प्रकृति पुद्गलद्रव्य है वह आत्माको मिथ्यादृष्टि करती है ऐसा माना जाय तो सांख्यमतीसे कहते हैं कि अहो सांख्यमती तेरे मतमें प्रकृति तो अचेतन है वह अचेतन प्रकृति जीवके मिथ्यात्वभावको करनेवाली ठहरी ऐसा बनता नहीं । अथवा ऐसा मानिये कि वह जीव ही पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको करता है तो ऐसा माननेसे पुद्गलद्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुआ जीव मिथ्यादृष्टि नहीं ठहरा ऐसा भी नहीं बन सकता। अथवा ऐसा माना जाय कि जीव और प्रकृति ये दोनों पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको करते हैं तो दोनोंकर किया गया उसका फल दोनों ही भोगें ऐसा ठहरा सो यह भी नहीं बनता । अथवा ऐसा मानिये कि पुद्गलद्रव्यनामा मिथ्यात्वको न तो प्रकृति करती है और न जीव करता है तो भी पुद्गलद्रव्य ही मिथ्यात्व हुआ सो ऐसा मानना क्या झूठ नहीं है ? इसलिये यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वनामा जीवका जो भाव कर्म है उसका कर्ता तो अज्ञानी जीव है परन्तु इसके निमित्तसे पुद्गलद्रव्यमें मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति उत्पन्न होती है।

(कर्मको ही सुख-दुःखादिका दाता माननेवाले सांख्यमतानुयायियोंके प्रति कथंचित् कर्तृत्वकी नय-व्यवस्था)

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ॥३३२॥

कम्मेहि सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ॥३३३॥
कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य ।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तिय किंचि ॥३३४॥
जह्मा कम्मं कुव्वइ कम्म देई हरत्ति जं किंचि ।
तह्मा उ सव्वे जीवा अकारया हुंति आवण्णा ॥३३५॥
पुरुसिच्छियाहिलासी इच्छीकम्म च पुरसमहिलसइ ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ॥३३६॥

जीव कर्मोंकर अज्ञानी किया जाता है उसी तरह कर्मोंकर ज्ञानी होता है कर्मोंकर सुआया जाता है उसी प्रकार कर्मोंकर ही जगाया जाता है कर्मोंकर सुखी किया जाता है उसी तरह कर्मोंकर दुखी किया जाता है और कर्मोंकर मिथ्यात्वको प्राप्त कराया जाता है तथा असंयमको प्राप्त कराया जाता है कर्मोंकर ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक और तिर्यग्लोकमें भ्रमाया जाता है और कर्मोंसे ही जो कुछ शुभ अशुभ है वह किया जाता है। क्योंकि कर्म ही करता है कम ही देता है कर्म ही हरता है जो कुछ करता है वह कर्म ही करता है इसलिये सभी जाव अकारक प्राप्त हुए-जीव कर्ता नहीं है। यह आचार्योंकी परिपाटी से आई ऐसी श्रुति है कि पुरुषवेदकर्म तो स्त्रीका अभिलाषी है और स्त्रीवेदनामा कर्म पुरुषको चाहता है।

तह्मा ण कोवि जीवो अवभचारी उ अह्य उवएसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥३३७॥

जह्मा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥३३८॥

तह्मा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि अह्म उवदेसे।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्म घाएदि इदि भणियं॥३३९॥

एवं संखुवएसं जे उ परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वइ अप्पा य अकारया सव्वे ॥३४०॥

इसलिये कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है हमारे उपदेशमें तो ऐसा है कि कर्म ही कर्मको चाहता है ऐसा कहा है । जिस कारण दूसरेको मारता है और परकर मारा जाता है वह भी प्रकृति ही है इसी अर्थको लेकर कहते हैं कि यह परघातनामा प्रकृति है इसलिये हमारे उपदेशमें कोई भी जीव उपघात करनेवाला नहीं है क्योंकि कर्म ही कर्मको घातता है ऐसा कहा है। इस तरह जो कोई यति ऐसा सांख्यमतका उपदेश निरूपण करते हैं उनके प्रकृति ही करती है, और आत्मा सब अकारक ही हैं ऐसा हुआ ।

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणई।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एयं मुणंतस्स ॥३४१॥

अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिओ उ समयम्हि ।
णवि सो सक्कइ तत्तो हीणो अहिओ य काउं जे ॥३४२॥

जीवस्स जीवरूवं विच्छरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कहं कुणई दव्वं ॥३४३॥

अह जाणओ उ भावो णाणसहावेण अत्थिइत्ति मयं ।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणइ ॥३४४॥

आचार्य कहते हैं जो, आत्माके कर्तापनेका पक्ष साधनेको तू ऐसा मानेगा कि मेरा आत्मा अपने आत्माको करता है ऐसा कर्तापनका पक्ष मानो तो ऐसा जाननेका तेरा मिथ्यात्वभाव है क्योंकि आत्मा नित्य असंख्यातप्रदेशी सिद्धांतमें कहा है उससे जो वह हीन अधिक करनेको समर्थ नहीं हो सकते। जीवका जीवरूप विस्तार अपेक्षा निश्चयकर लोकमात्र जानो ऐसा जीवद्रव्य उस परिणामसे क्या हीन तथा अधिक कैसे कर सकता है ? अथवा ऐसा मानिए जो ज्ञायक भाव ज्ञानस्वभावकर तिष्ठता है तो उसी हेतुसे ऐसा हुआ कि आत्मा अपने आपको स्वयमेव नहीं करता ॥ इसलिए कर्तापन साधनेको विवक्षा पलटकर पक्ष कहा था सो नहीं बना। यदि कर्मका कर्ता कर्मको ही मानें तो स्याद्वादसे विरोध ही आयेगा इसलिए कथंचित् अज्ञान अवस्थामें अपने अज्ञानभावरूप कर्मका कर्ता माननेमें स्याद्वादसे विरोध नहीं है।

(अन्यको कर्ता और अन्यको भोक्ता माननेवाले बौद्धोंका युक्ति पूर्वक निषेध)

केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयन्तो ॥३४५॥

केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो ।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥३४६॥

जो चेव कुणइ सोचिय ण वेयए जस्स एस सिद्धन्तो ।
सो जीवो णायव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३४७॥

अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ जस्स एस सिद्धन्तो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३४८॥

जिस कारण जीव नामा पदार्थ कितनी एक पर्यायोंकर तो विनाशको पाता है और कितनी एक पर्यायोंसे नहीं विनष्ट होता इस कारण वह ही करता है अथवा अन्य कर्ता होता है एकांत नहीं स्याद्वाद है। जिस कारण जीव कितनी एक पर्यायोंसे विनसता है और कितनी एक पर्यायोंसे नहीं विनसता, इस कारण वही जीव भोक्ता होता है अथवा अन्य भोगता है वह नहीं भोगता ऐसा एकांत नहीं है स्याद्वाद है। और जिसका ऐसा सिद्धांत (मत) है कि जो जीव करता है वह नहीं भोगता अन्य ही भोगनेवाला होता है वह जीव मिथ्यादृष्टि जानना अरहंतके मतका नहीं है। तथा जिसका ऐसा सिद्धांत है कि अन्य कोई करता है और दूसरा कोई भोगता है वह जीव मिथ्यादृष्टि जानना अरहंतके मतका नहीं है।

(जीव कर्मको करता हुआ भी तन्मय नहीं होता, इस बातका दृष्टान्तपूर्वक निरूपण)

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ॥३४९॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणेहि कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥३५०॥

जह सिप्पिओ उ करणाणि गिह्णइ ण सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो करणाणि उ गिह्णइ ण य तम्मओ होइ ॥३५१॥

जैसे सुनार आदि कारीगर आभूषणादिक कर्मको करता है परन्तु वह आभूषणादिकोंसे तन्मय नहीं होता उसी तरह जीव भी पुद्गलकर्मको करता है। तो भी उनसे तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी हथौड़ा आदि करणोंसे कर्म करता है। परन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता, उसी तरह जीव भी मन, वचन, काय आदि करणोंसे कर्मको करता है तौ भी उनसे तन्मय नहीं होता। जैसे शिल्पी करणोंको ग्रहण करता है तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता उसी तरह जीव मन वचन कायरूप करणोंको ग्रहण करता है तौ भी उनसे तन्मय नहीं होता।

(जीव कर्म-फलको भोगते हुए भी तन्मय नहीं होता इस बातका दृष्टान्तपूर्वक निरूपण)

जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ ॥३५२॥

एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होई ॥३५३॥

जह सिप्पिओ उ चिट्ठं कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णो से।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वइ हवइ य अणण्णो से ॥३५४॥

जह चिट्ठं कुव्वंतो उ सिप्पिओ णिच्च दुक्खिओ होई।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥३५५॥

जैसे शिल्पी आभूषणादि कर्मोंके फलको भोगता है तो भी वह उनसे तन्मय नहीं होता उसी तरह जीव भी सुख दुःख आदि कर्मके फलको भोगता है परन्तु उनसे तन्मय नहीं होता। इस तरहसे तो व्यवहारका मत संक्षेपसे कहने योग्य है और जो निश्चयके वचन हैं वे अपने परिणामोंसे किये होते हैं उनको सुनो। जैसे शिल्पी अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको करता है परन्तु वह उस चेष्टासे जुदा नहीं होता है तन्मय है उसी तरह जीव भी अपने परिणामस्वरूप चेष्टारूप कर्मको करता है उस चेष्टाकर्मसे अन्य नहीं है तन्मय है। जैसे शिल्पी चेष्टा करता हुआ निरंतर दुःखी होता है उस दुःखसे जुदा नहीं है तन्मय है उसी तरह जीव भी चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है।

(निश्चयनयसे जीवके ज्ञाता, दृष्टादि स्वरूपका दृष्टान्त-पूर्वक वर्णन)

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह जाणओ दु ण परस्स जाणओ जाणओ सो दु ॥३५६॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ।
तह पासओ दु ण परस्स पासओ पासओ सो दु ॥३५७॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होइ।
तह संजओ दु ण परस्स संजओ संजओ सो दु ॥३५८॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥३५९॥

जैसे सफेदी करनेवाली कलई अथवा खडिया मिट्टी चूना आदि सफेद वस्तु वह अन्य जो भींत आदि वस्तु उसको सफेद करनेवाली है इससे खड़िया नहीं है वह तो भींतके बाहर भागमें रहती है भींतरूप नहीं होती खड़िया तो आप खड़ियारूप ही है उसी तरह जाननेवाला है वह परद्रव्यको जाननेवाला है इस कारणसे ज्ञायक नहीं है आप ही ज्ञायक है जैसे खड़िया० उसी तरह देखनेवाला परद्रव्यको देखनेवाला होनेसे दर्शक नहीं है आप ही देखनेवाला है। जैसे खड़िया०....उसी तरह संयत परको त्यागनेसे संयत नहीं है आप ही संयत है। जैसे खड़िया०.... उसी तरह श्रद्धान परके श्रद्धानसे श्रद्धान नहीं है आप ही श्रद्धान है।

(व्यवहारनयसे जीवके ज्ञाता दृष्टादिस्वरूपका दृष्टान्तपूर्वक निरूपण)

एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ॥३६०॥

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणइ णाया वि सयेण भावेण ॥३६१॥

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सइ जीवोवि सयेण भावेण ॥३६२॥

ऐसा दर्शन ज्ञान चारित्रमें निश्चयनयका कहा हुआ वचन है तथा व्यवहारनयके वचन है उसे संक्षेपसे कहते हैं उसको सुनो। जैसे खड़िया अपने स्वभावकर भीत आदि परद्रव्योंको

सफेद करती है उसी तरह जाननेवाला भी परद्रव्यको अपने स्वभावकर जानता है ।

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णायावि सयेण भावेण ॥३६३॥

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मदिट्ठी सहावेण ॥३६४॥

एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ॥३६५॥

जैसे खड़िया० ..उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यको देखता है जैसे खड़िया०...उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यको त्यागता है जैसे खड़िया०...उसी तरह ज्ञाता भी अपने स्वभावकर परद्रव्यका श्रद्धान करता है इस तरह जो दर्शनज्ञानचारित्रमें व्यवहारका विशेषकर निश्चय कहा है इसी तरह अन्य पर्यायोंमें भी जानना चाहिये ।

(राग, द्वेष, मोह जीवके ही अज्ञानरूप परिणाम हैं और ये ही दर्शन, ज्ञान, चारित्रका घात करते हैं)

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे विसये ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥३६६॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे कम्मे ।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥३६७॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे काये।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥३६८॥

दर्शन ज्ञान चारित्र हैं वे अचेतन विषयोंमें तो कुछ भी नहीं हैं इसलिये उन विषयोंमें आत्मा क्या घात करे ? घातनेको कुछ भी नहीं। दर्शन ज्ञान चारित्र अचेतन कर्ममें कुछ भी नहीं हैं। इसलिये उस कर्ममें आत्मा क्या घात करे ? कुछ भी घातनेको नहीं, दर्शन ज्ञान चारित्र अचेतन कायमें कुछ भी नहीं हैं इसलिये उन कायोंमें आत्मा क्या घाते ? कुछ भी घातनेको नहीं।

णाणस्स दंसणस्स य भणिओ घाओ तहा चरित्तस्स।
णवि तहिं पुग्गलदव्वस्स कोऽवि घाओ उ णिद्दिट्ठो ॥३६९॥

जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तह्मा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो उ विसएसु ॥३७०॥

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एएण कारणेण उ सद्दादिसु णत्थि रागादि ॥३७१॥

घात ज्ञानका दर्शनका तथा चरित्रका कहा है वहां पुद्गल द्रव्यका तो कुछ भी घात नहीं कहा। जो कुछ जीवके गुण हैं वे निश्चयकर परद्रव्योंमें नहीं हैं इसलिये सम्यग्दृष्टिके विषयोंमें राग ही नहीं है। राग-द्वेष-मोह ये सब जीवके ही एक (अभेद) रूप परिणाम हैं इसीकारण रागादिक शब्दादिकोंमें नहीं हैं।

(सर्व-द्रव्य अपने-अपने स्वभावसे उत्पन्न होते हैं)

अण्णदविएण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ।
तह्मा उ सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ॥३७२॥

अन्यद्रव्यकर अन्यद्रव्यके गुणका उत्पाद नहीं किया जा सकता इसलिये यह सिद्धांत है कि सभी द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उपजते हैं।

अज्ञानी आत्माही रूप, रसादिको स्वयं ग्रहण कर और उन्हें भला बुरा मानकर रागी, द्वेषी हो उपशम भावको प्राप्त नहीं होता है, इस बातका विस्तृत विवेचन)

णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुयाणि।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥३७३

पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो।
तह्मा ण तुमं भणिओ किंचिवि किं रूससि अबुद्धो ॥३७४॥

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं ॥३७५॥

बहुत प्रकारके निंदा और स्तुतिके वचन हैं उनरूप पुद्गल परिणमते हैं उनको सुनकर यह अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मुझको कहा है इसलिए ऐसा मान रोस (गुस्सा) करता है और संतुष्ट होता है। शब्दरूप परिणत हुआ पुदगलद्रव्य है सो यह पुदगलद्रव्य गुण है, अन्य है, इसलिए हे अज्ञानी जीव तुझको तो कुछ भी नहीं कहा, तू अज्ञानी हुआ क्यों रोस करता है ? अशुभ अथवा शुभ शब्द तुझको ऐसा नहीं कहता कि मुझको सुन और श्रोत्र इन्द्रियके विषयमें आये हुए शब्द-के ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड़ नहीं प्राप्त होता।

असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥३७४॥

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव ।
णय एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं ॥३७७॥

असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥३७८॥

अशुभ अथवा शुभरूप तुमको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको देख और चक्षु इन्द्रियके विषय में आये हुए रूपके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशोंको छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ अथवा शुभ गंध तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको सूंघ और घ्राण इन्द्रियके विषयमें आये हुए गंधके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता। अशुभ वा शुभ रस तुझको ऐसा नहीं कहता कि मुझको तू आस्वाद कर और रसना इन्द्रियके विषयमें आये रसके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता।

असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥३७९॥

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥३८०॥

असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ वुज्झ मंति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं दव्वं ॥३८१॥

एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो ॥३८२॥

अशुभ वा शुभ स्पर्श तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको स्पर्श (छूले) और स्पर्शन इन्द्रियके विषयमें आये हुए स्पर्शके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता । अशुभ वा शुभ द्रव्यका गुण तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझको जान और बुद्धिके विषयमें आये हुए गुणके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़कर नहीं प्राप्त होता । अशुभ वा शुभ द्रव्य तुझको ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान और बुद्धिके विषयमें आये हुए द्रव्यके ग्रहण करनेको वह आत्मा भी अपने प्रदेशको छोड़ नहीं प्राप्त होता । यह मूढ जीव ऐसा जानकर भी उपशम भावको नहीं प्राप्त होता और परके ग्रहण करने को मन करता है क्योंकि आप कल्याणरूप बुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको नहीं प्राप्त हुआ है ।

(प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचनाका स्वरूप)

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिकमणं ॥३८३॥

कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि बज्झइ भविस्सं ।
तत्तो णियत्तए जो सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ॥३८४॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ॥३८५॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं य पडिक्कमदि जो ।
णिच्चं आलोचयइ सो हु चरित्तं हवइ चेया ॥३८६॥

पहले अतीत कालमें किये जो शुभ अशुभ ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार विशेषरूप कर्म हैं इनसे जो चेतयिता अपने आत्माको छुड़ाता है वह आत्मा प्रतिक्रमणस्वरूप है और जो आगामी कालमें शुभ तथा अशुभ कर्म जिस भावके होनेपर बंधे उस अपने भावसे जो ज्ञानी छूटै वह आत्मा प्रत्याख्यान-स्वरूप है। और जो वर्तमान कालमें शुभ अशुभ कर्म अनेक प्रकार ज्ञानावरणादि विस्ताररूप विशेषोंको लिए हुए उदय आया है उस दोषको जो ज्ञानी अनुभवता है उसका स्वामिपना कर्ता-पना छोड़ता है वह आत्मा निश्चयसे आलोचना स्वरूप है इस तरह जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करता है नित्य प्रतिक्रमण करता है नित्य आलोचना करता है वह चेतयिता निश्चयकर चरित्र स्वरूप है।

(कर्म-फलका वेदन करनेवाला जीव कर्मका ही बंध करता है)

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८७॥
वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८८॥
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८९॥

जो आत्मा कर्मके फलको अनुभवता हुआ कर्मफलको

आपरूप ही करता है, मानता है वह फिर भी दुःखका बीज ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको बांधता है। जो कर्मके फल को वेदता हुआ आत्मा उस कर्मफलको ऐसा जाने कि यह मैंने किया है वह फिर भी जो आत्मा कर्मके फलको वेदता हुआ सुखी और दुःखी होता है वह चेतियता०···।

(ज्ञान सर्ववस्तुओंसे भिन्न है इस बातका सयुक्तिक विस्तृत विवेचन)

सत्थं णाणं ण हवइ जह्मा सत्थं ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥ ३९० ॥

सद्दो णाणं ण हवइ जह्मा सद्दो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥३९१॥

रूवं णाणं ण हवइ जह्मा रूवं ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥३९२॥

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जानता नहीं है, जड़ है, इसलिए ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है, ऐसे जिन भगवान जानते हैं कहते हैं। शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जानता नहीं है इसलिए ज्ञान अन्य है, शब्द अन्य है, ऐसा जिनदेव कहते हैं। रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं है इसलिए ज्ञान अन्य है, रूप अन्य है, ऐसा जिनदेव कहते हैं।

वण्णो णाणं ण हवइ जह्मा वण्णो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥३९३॥

गंधो णाणं ण हवइ जह्मा गंधो ण याणए किंचि।
तह्मा अएणं णाणं अएणं गंधं जिणा विंति ॥३९४॥

ण रसो दु हवदि णाणं जह्मा दु रसो ण याणए किंचि।
तह्मा अएणं णाणं रसं य अएणं जिणा विंति ॥३९५॥

वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ नहीं जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है वर्ण अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ नहीं जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है गंध अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। और रस ज्ञान नहीं है क्योंकि रस कुछ जानता नहीं है इसलिए ज्ञान अन्य है रस अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं।

फासो ण हवइ णाणं जह्मा फासो ण याणए किंचि।
तह्मा अएणं णाणं अएणं फासं जिणा विंति ॥ ३९६॥

कम्मं णाणं ण हवइ जह्मा कम्मं ण याणए किंचि।
तह्मा अएणं णाणं अएणं कम्मं जिणा विंति ॥३९७॥

धम्मो णाणं ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि।
तह्मा अएणं णाणं अएणं धम्मं जिणा विंति ॥३९८॥

स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है स्पर्श अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है कर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि

धर्म कुछ नहीं जानता, इसलिये ज्ञान अन्य है धर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं।

णाणमधम्मो ण हवइ जह्मा-धम्मो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥३९९॥
कालो णाणं ण हवइ जह्मा कालो ण याणए किंचि।
तह्मा अण्ण णाणं अण्णं काल जिणा विंति ॥४००॥
आयासंपि ण णाणं जह्मा यासं ण याणए किंचि।
तह्मा अण्णं यासं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥४०१॥

अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ नहीं जानता इसलिये ज्ञान अन्य है अधर्म अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। काल ज्ञान नहीं है क्योंकि काल कुछ नहीं जानता इसलिये ज्ञान अन्य है काल अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। आकाश भी ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ नहीं जानता इसलिये ज्ञान अन्य है आकाश अन्य है ऐसा जिनदेवने कहा है।

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा।
तह्मा अण्णं णाणअज्झवसाणं तहा अण्णं ॥४०२॥
जह्मा जाणइ णिच्च तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥४०३॥
णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्ज अब्भुवंति वुहा ॥४०४॥

उसी प्रकार अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि अध्यवसान

अचेतन है इसलिये ज्ञान अन्य है अध्यवसान अन्य है ऐसा जिनदेव कहते हैं। इसलिये जीव ज्ञायक है वही ज्ञान है क्योंकि निरंतर जानता है और ज्ञान ज्ञायकसे अभिन्न है जुदा नहीं है ऐसा जानना चाहिये और ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है संयम है अंगपूर्वगत सूत्र है और धर्म-अधर्म है तथा दीक्षा भी ज्ञान है ऐसा ज्ञानीजन अंगीकार करते (मानते) हैं।

(अमूर्त्तिक विशुद्ध आत्मा कर्म-नोकर्मरूप मूर्त्तिक आहारको न ग्रहण ही करता है और न छोड़ता ही है)

अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारओ हवइ एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ उ ॥ ४०५ ॥
णवि सक्कइ घित्तुं जं ण विमोत्तुं जं य जं परद्व्वं ।
सो कोवि य तस्स गुणा पाउगिओ विस्ससो वावि ॥४०६॥
तह्मा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥४०७॥

इस प्रकार जिसका आत्मा अमूर्तीक है वह निश्चयकर आहारके नहीं है क्योंकि आहार मूर्तीक है वह आहार तो पुद्गलमय है। जो परद्रव्य है यह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और छोड़ा भी नहीं जासकता वह कोई ऐसाही आत्माका गुण प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है। इसलिये जो विशुद्ध आत्मा है वह जीव अजीव परद्रव्यमेंसे किसीको भी न तो ग्रहण ही करता है और न किसीको छोड़ता है।

(नाना प्रकारके लिंग मोक्षमार्ग नहीं हैं, किन्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है)

पासंडीलिंगाणि व गिहलिंगाणि व बहुप्पययाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति ॥४०८॥
ण उ होदि मोक्खमग्गो लिंग जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति ॥४०९॥

पाखंडिलिंग अथवा गृहिलिंग ऐसे बहुत प्रकारके बाह्य लिंग हैं उनको धारण कर अज्ञानी जन ऐसा कहते हैं कि यह लिंग ही मोक्षका मार्ग है, आचार्य कहते हैं कि लिंग मोक्षका मार्ग नहीं है क्योंकि अर्हंत देव भी देहसे निर्ममत्व हुए लिंगको छोड़कर दर्शनज्ञानचरित्रको ही सेवते हैं।

ण वि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहिमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥४१०॥

पाखंडी लिंग और गृहस्थलिंग यह मोक्षमार्ग नहीं है, दर्शनज्ञानचारित्र हैं वे मोक्षमार्ग हैं ऐसा जिनदेव कहते हैं।
(अतएव बाह्य लिंग छोड़कर सच्चे मोक्षमार्गमें लगना चाहिए)

तह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४११ ॥

जिसकारण द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं है इस कारण गृहस्थोंकर अथवा गृहत्यागी मुनियोंकर ग्रहण किये गये लिंगोंको छोड़कर अपने आत्माको दर्शनज्ञानचारित्ररूप मोक्षमार्गमें युक्त करो। यह श्रीगुरुओंका उपदेश है।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥४१२॥

हे भव्य तू मोक्षमार्गमें अपने आत्माको स्थापनकर उसीका ध्यानकर उसीको अनुभवगोचर कर और उस आत्मामें ही निरन्तर विहार कर अन्यद्रव्योंमें मत विहारकर।

(वाह्य लिंग ममत्व रखनेवाला समयसारको नहीं जानता)

पाखंडीलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं ॥ ४१३ ॥

जो पुरुष पाखंडीलिंगोंमें अथवा बहुत भेदवाले गृहस्थलिंगोंमें ममता करते हैं अर्थात् हमको ये ही मोक्षके देनेवाले हैं ऐसा मानते हैं, उन पुरुषोंने समयसारको नहीं जाना।

(निश्चय और व्यवहारनयसे मोक्षमार्ग की व्यवस्था)

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥४१४॥

व्यवहारनय तो मुनि श्रावकके भेद से दोनोंही प्रकारके लिंगोंको मोक्षके मार्ग कहता है और निश्चयनय सभी लोगों को मोक्षमार्गमें इष्ट नहीं करता।

(समयसारके जाननेका फल)

जो समयपाहुडमिणं पडिणं अत्थतच्चदो णाउं।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं ॥ ४१५ ॥

जो चेतयिता पुरुष-भव्यजीव इस समय प्राभृतको पढ़कर अर्थसे और तत्वसे जानकर इसके अर्थमें ठहरेगा वह उत्तम सुखस्वरूप होगा।

सर्वविशुद्धज्ञानअधिकारः समाप्तः

❀ सस्ती ग्रन्थमाला का सोलहवां पुष्प ❀

श्री

समयसार-नाटक

(भाषा छन्दोबद्ध)

रचयिता—

कविवर पं० बनारसीदास जी

आगरा ।

प्रकाशक—

मन्त्री—सस्ती ग्रन्थमाला,

७/३३ दरयागंज, देहली ।

प्रथमावृत्ति २००० } वीर नि० स० २४७६ { मूल्यलागतमात्र १।) सवा रु०

सस्ती ग्रंथमाला के प्रकाशित ग्रन्थ

१ रत्नकरण्ड श्रावकाचार सजिल्द पृ० ७६० ३)
२ मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ५०० ३)
३ जैन महिला शिक्षा संग्रह पृ० २४० १।)
४ सुखकी झलक पृ० २०० (पूज्य वर्णीजी के प्रवचनों का संकलन) ।।।)
५ श्रावक धर्मसंग्रह पृ० ४०० (पं० दरयावसिंह जी सोधिया-कृत) १।।)
६ सरल जैन धर्म पृ० १५० (बालकोपयोगी चारों भाग) ।=)
७ छहढाला सार्थ पृ० ८० ।)
८ पद्मपुराण सजिल्द बडी साइज पृ० ७०० ७)

इन आठों ग्रन्थों का सेट केवल १२) में मिलेगा।

९ जैन शतक (पं० भूधरदास जी का कवितामय) =)
१० हम दुखी क्यों हैं ? =)
११ ब्रह्मचर्य रहस्य =)
१२ आदर्श कथा संग्रह पृ० १६० ।।=)
१३ समयसार (पं० बनारसीदास जी कृत छन्दोबद्ध) १।)
१४ उपासना तत्व =)
१५ कल्याण गुटका (स्तोत्र, सामायिक पाठ, पूजाओं का-संग्रह) पृ० ६०० १।)
१६ अर्वाचीन प्राचीन भजन संग्रह ।)

इन समस्त पुस्तकों का सेट केवल १५) में मिलेगा।

प्रबन्धक—सस्ती ग्रन्थमाला
७/२३ दरयागंज, देहली,

कुछ परिचय



प्रातःस्मरणीय श्री कुन्दकुन्दाचार्यने प्राकृत में **समयसार** ग्रन्थकी रचना करके जगत का जो महान उपकार किया है वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। उस समयसार पर श्री अमृतचन्द्रसूरि ने संस्कृत भाषामें कलश रूप श्लोकों की रचना की है जिसका नाम 'नाटक समयसार कलश' रखा है। श्रीअमृत-चन्द्रसूरिके उसी 'नाटक समयसार कलश' को कविवर स्व० पं० बनारसीदास ने भाषा में छन्दोबद्ध रचना करके हिन्दीभाषा जानने वालों का बहुत उपकार किया है।

कविवर बनारसीदास जी आगरा निवासी श्रीमाल जैन थे। आपका जन्म वि० सं १६४३ में हुआ था आपके पिता का नाम श्री खड्गसेन था। पं० बनारसीदास जी ने, अपना जीवन चरित स्वयं अपने हाथ से अर्द्ध कथानक में लिखा है। पाठक महानुभाव उसको अवश्य पढ़ें यह मेरा अनुरोध है।

पं० बनारसीदास जी १७ वीं शताब्दी के अच्छे गणनीय कवि हुये हैं। आध्यात्मिक जैसे कठिन विषयको सरल छन्दोंमें निबद्ध कर देना उनके कवि-कौशलका पर्याप्त परिचायक है। पाठक महानुभाव प्रस्तुत ग्रन्थके छन्दोंको पढ़कर उसका अनुभव कर सकते हैं।

यहां श्री १०५ पूज्य क्षु० चिदानन्द जी महाराज का (उनका आदेश न होते हुए भी) उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता आप

एक ज्ञान-प्रचार-प्रेमी, कर्मठ, तपस्वी हैं। अभिमान और आत्म-प्रशंसा सुननेसे दूर रहते हैं। जनतामें ग्रन्थों के स्वाध्याय का व्यापक प्रचार करनेके लिये आपने 'सस्ती ग्रन्थमाला' की स्थापना की है। इस ग्रन्थमालासे लगभग एक लाख प्रतियां भिन्न भिन्न ग्रन्थों की केवल एक वर्ष में प्रकाशित हो चुकी हैं जो कि सुलभ, सस्ते, मूल्य पर मिल रही हैं। स्वाध्याय-प्रेमी महानुभावों को तथा ज्ञान-प्रचार-प्रेमी उदार सज्जनों को इस ग्रन्थमाला के सुलभ, सस्ते, तथा बहुत उपयोगी ग्रन्थ खरीद कर स्व-पर कल्याण करना चाहिये।

यह संस्था चिरस्थायी रहे ऐसी कामना है।

—अजितकुमार जैन

विषय-सूची ।





स्वाध्याय

—::o::—

नेत्र बाहरी वस्तुओं को अवश्य देखते हैं किन्तु अपनी भीतरी वस्तु आत्मा का अनुभव करने के लिये ये नेत्र व्यर्थ हैं। उस अन्तरङ्ग दर्शन के लिये आत्म-ज्ञान की आवश्यकता है। वह आत्मज्ञान आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से प्राप्त होता है। अतः आत्मा को विमल बनाने के लिये आध्यात्मिक ग्रन्थ 'समयसार' आदिका स्वाध्याय परमउपयोगी है।

—अजितकुमार



श्रीवीतरागाय नमः ।

कविवर पं० बनारसीदासकृत छन्दोबद्ध

नाटक समयसार



श्री पार्श्वनाथ–स्तुति

करम-भरम जग-तिमिर-हरन-खग, उरग-लखन-पग शिवमग दरसी । निरखत नयन भविक जल बरखत, हरखत अमित भविकजनसरसी ॥ मदन-कदन-जित परम-धरमहित, सुमिरत भगत भगत सब डरसी । सजल जलद–तन मुकुट सपत-फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसी ॥ १ ॥

सर्वलघु स्वरांत अक्षरयुक्त छप्पय छंद ।

सकल करमखल-दलन, कमठ-सठ-पवन कनक-नग । धवल परमपद-रमन जगतजन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजल घनसमतन समकर । पर-अघ रजहर

जलद, सकल जन-नत भव-भय-हर ॥ जम-दलन नरक-पद छय-करन, अगम अतट-भव-जल-तरन । वर सबल मदन बन हर-दहन, जय जय परमअभय करन ॥ २ ॥

सवैया इकतीसा ।

जिन्हके वचन उर धारत जुगल नाग, भये धरनिंद पदमावति पलक में । जाके नाम महिमासों कुधातु कनक करै, पारस पखान नामी भयो है खलक में ॥ जिनकी जनमपुरी नाम के प्रभाव हम, अपनो स्वरूप लख्यो भानुसो भलक में । तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब, दीजे मोहि साता दृगलीला की ललक में ॥ ३ ॥

सिद्ध भगवानकी स्तुति । (अडिल्ल)

अविनाशी अविकार, परम रसधाम हैं । समाधान सरवंग, सहज अभिराम हैं । शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंतहैं । जगत शिरोमनि सिद्ध, सदा जयवंत हैं ॥ ४ ॥

साधुरूप भगवानकी स्तुति । (सवैया (इकतीसा)

ज्ञान कौ उजागर सहज सुख सागर, सुगुण रतनागर विरागरस भर्यौ है । सरन की रीति हरै मरन कौ भै न करै, करनसों पीठ दे चरण अनुसर्यौ है ॥ धरमको मंडन भरम को विहंडन है, परम नरम ह्वैके करमसों लर्यौ है । ऐसौ मुनिराज भुवलोकमें विराजमान, निरखि बनारसि नमस्कार कर्यौ है ॥ ५ ॥

सम्यग्दृष्टि स्तुति । (सवैया ८ भगण)

भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन । केलि करैं शिव मारग में, जग मांहि जिनेश्वर के लघुनंदन । सत्य स्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात-निकंदन । संत दशा तिन्हकी पहिचान करैं कर जोरि बनारसि वंदन ॥ ६ ॥

सवैया इकतीसा ।

स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त सांचे सांचे बैन कहैं सांचे जैनमती हैं । काहूके विरुद्ध नांहि परजाय-बुद्धि नांहि, आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं ॥ सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घट में प्रगट सदा, अंतरकी लच्छिसों अजाची लच्छपती हैं । दास भगवन्त के उदास रहैं जगतसों, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं ॥ ७ ॥

सवैया इकतीसा ।

जाके घट प्रगट विवेक गनधरकौसौ, हिरदे हरख महा-मोह कौं हरतु है । सांचौ सुख मानै निज महिमा अडोल जानैं, आपुहीमें आपनो सुभाव ले धरतु है ॥ जैसें जल-कर्दम कतकफल भिन्न करै, तैसें जीव अजीव विलछनु करतु है । आतम सकति साधै ज्ञानकौ उदौ आराधै, सोई समकिती भवसागर तरतु है ॥ ८ ॥

मिथ्यादृष्टि । सवैया इकतीसा ।

धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौर२ ठानत लराई पच्छपातकी । भूल्यौ अभिमान में न पाउं धरे धरनी में, हिरदे में करनी विचारै उतपात की ॥ फिरे डांवाडौल सौं करमके कलोलिनिमें, व्हैरही अवस्थासु वघूले कैसे पातकी । जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसौ ब्रह्म-घाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ६ ॥

दोहा ।

बंदौं शिव अवगाहना, अरु बंदों शिवपंथ ।
जसु प्रसाद भाषा करौं, नाटक नामगरंथ ॥ १० ॥

कवि स्वरूप वर्णन ।

चेतनरूप अरूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ । मोह महातम आतम अङ्ग, कियो परसंग महातम घेरौ ॥ ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगम केरौ । जासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेगि मिटे भववास वसेरौ ॥११॥

सवैया इकतीसा

जैसें कोउ मूरख महासमुद्र तिरिवे को, भुजानिसें उद्यत भयौ है तजि नावरौ । जैसें गिरि ऊपरि बिरखफल तोरिवेकों, बावनु पुरुष कोऊ उमंगै उतावरौ । जैसें जलकुण्डमें निरखि शशि प्रतिविंव, ताके गहिवेकों कर नीचो करै टावरौ । तैसें

मै अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनौ, गुनी मोहि हसेंगे कहेंगे कोउ बावरौ ॥ १२ ॥

सवैया इकतीसा ।

जैसें कोउ रतनसों बींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशमकी डोरी पोई गई है । तैसे बुद्धिटीका करि नाटक सुगम कीनौ, तापरि अलप बुद्धि सुद्धि परिनई है ॥ जैसै काहू देशके पुरुष जैसी भाषा कहैं, तैसी तिनहूं के बालकनि सीख लई है । तैसे ज्यों गंरथकौ अरथ कह्यौ गुरु त्योंहि, हमारी मति कहिवेकों सावधान भई है ॥ १३ ॥

सवैया इकतीसा ।

कबहों सुमति व्है कुमतिको विनाश करै, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है । कबहू दया व्है चित्त करत दयालरूप, कबहों सुलालसा व्है लोचन लगति है ॥ कबहों आरती व्है के प्रभु सनमुख आवे, कबहों सुभारती व्है बाहरि बगति है । धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी, हिरदै हमारे भगवंत की भगति है ॥ १४ ॥

सवैया इकतीसा ।

मोख चलिवेकौ सौंन करम कौ करै बौन, जाके रस भौन बुध लोन ज्यों घुलत है । गुनको गंरथ निरगुनकौं सुगम पंथ, जाको जसु कहत सुरेश अकुलत है ॥ याही के

जु पच्छी ते उडत ज्ञानगगनमें, याहीके विपच्छी जग जाल में रुलत है। हाटकसौ विमल विराटकसौ विसतार, नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

दोहा।

कहों शुद्ध निहचै कथा, कहों शुद्ध विवहार।
मुक्ति पंथ कारन कहों, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥
वस्तुविचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनभौ याकौ नाम ॥१७॥
अनुभौ चिंतामनि रतन, अनुभौ है रसकूप।
अनुभौ मारग मोच्छ को, अनुभौ मोच्छ सरूप ॥ १८ ॥

सवैया इकतीसा।

अनुभौ के रसकों रसायन कहत जग अनुभौ अभ्यास यह तीरथकी ठौर है। अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरस सु, अनुभौ अधोरसासौं ऊरधकी दौर है॥ अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वाद पंच अमृतकौ कौर है। अनुभौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥ १९ ॥

दोहा।

चेतनवंत अनंत गुन, परयय सकति अनंत।
अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरवविरतंत ॥ २० ॥

फरस वर्न रस गन्धमय, नरद फास संठान ।
अनुरूपी पुद्गल दरब, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥
जैसैं सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म ।
तैसें पुद्गल जीवकों, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥
ज्यों पंथिक ग्रीसमसमै, बैठे छाया मांहिं ।
त्यों अधर्म की भूमिमें, जड़ चेतन ठहरांहिं ॥ २३ ॥
संतत जाके उदर में, सकल पदारथ वास ।
जो भाजन सब जगत कौ, सोई दरब अकाश ॥२४॥
जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तुथितिठान ।
परावर्त्त वर्त्तन धरै, काल दरब सो जान ॥ २५ ॥
समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास ॥ २६ ॥
तनता मनता वचनता, जड़ता जड़ संमेल ।
लघुता गुरुता गमनता, ए अजीव के खेल ॥ २७ ॥
जो विशुद्ध भावनि बंधै, अरु ऊरधमुख होय ।
जो सुखदायक जगतमें, पुरायपदारथ सोय ॥ २८ ॥
संकलेस भावनि बधैं, सहज अधोमुख होय ।
दुखदायक संसार में, पाप पदारथ सोय ॥ २९ ॥
जोई करमउद्योत धरि, होइ क्रिया रसरत्त ।
करषै नूतन करमकों, सोई आस्रव तत्त ॥ ३० ॥
जो उपयोग सरूप धरि, वरतै योग विरत्त ।

रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्त ॥ ३१ ॥
जो पूरब सत्ता करम, करि थिति पूरण आउ ।
खिरवैकों उद्यत भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥ ३२ ॥
जो नवकर्म पुरानसों, मिलें गांठि दृढ होइ ।
सकति बढ़ावै बंसकी, बंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥
थिति पूरनकरि जो करम, खिरै बंधपद भानि ।
हंस अंस उज्जल करै, मोक्ष तत्व सो जानि ॥ ३४ ॥
भावपदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व ।
द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३५ ॥

सवैया इकतीसा ।

परमपुरुष परमेश्वर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है । अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज, निरदुन्द मुकत मुकुंद अमलान है ॥ निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमनि सुजान है । सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध स्वामी शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ३६

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध असुद्ध उपजोगी है । चिद्रूप स्वयंभू चिन्मूरति धरमवंत प्रानवंत प्रानिजंतु भूत भवभोगी है ॥ गुनधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी अंगधारी संघधारी जोगधारी जोगी है । चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम करम को करतार परम विजोगी है ॥ ३७ ॥

दोहा ।

खं विहाय अंबर गगन, अन्तरिच्छ जगधाम ।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ए अकाशके नाम ॥३८॥
जम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्ती, मृतथान ।
प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान ॥३९॥
पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकर रोगशुभ कर्म ।
सुखदायक संसार फल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥
पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ।
कलिल कलुष किलविष दुरित, अशुभकर्म के नाम॥४१॥
सिद्धक्षेत्र त्रिभुवनमुकुट, शिवमग अविचलथान ।
मोक्ष मुगति बैकुंट शिव, पंचमगति निरवान ॥४२॥
प्रज्ञा धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंशविशुद्धि ॥ ४३ ॥

विचक्षण पुरुषके नाम—

निपुन विचक्षन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥४४॥
कलावन्त कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत ।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त ॥ ४५

अथ मुनीश्वरके नाम—

मुनि महन्त तापस तपी, भिक्षुक चारितधाम ।
यती तपोधन संयमी, ब्रती साधु ऋषिनाम ॥ ४६ ॥

दरस विलोकन देखनो, अवलोकन दृगचाल ।
लखन दृष्टि निरखन जुवनि चितवन चाहन भाल ॥४७॥
ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान ।
संजम चारित आचरण, चरनवृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥
सम्यक सत्य अमोघ सत, निसंदेह निरधार ।
ठीक यथारथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ॥४९॥
अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक ।
मुधा मोघ निष्फल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥५०॥

सवैया इकतीसा ।

जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आस्रव संवर निरजरा बंध मोष है । सरबविशुद्ध स्याद्वाद साध्य-साधक, द्वादस दुवार धरै समैसार कोष है ॥ दरवानुयोग दरवानुयोग दूरि करै, निगमको नाटक परमरस पोष है । ऐसौ परमागम बनारसी बखानै जामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारित की चोष है ॥ ५१ ॥

जीवद्वार ।

दोहा ।

शोभित निजअनुभूतियुत, चिदानंद भगवान ।
सार पदारथ आत्मा, सकल पदारथ जान ॥ १२ ॥

सवैया तेईसा ।

जो अपनी दुति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी । चेतन अंक सदा निकलंक, महासुखसागर कौ विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी । सो शिवरूप वसै शिवथानक, ताहि विलोक नमें शिवगामी ॥ २ ॥

सवैया तेईसा ।

जोग धरै रहै जोगसुं भिन्न, अनंत गुनातम केवल ज्ञानी । तासु हृदे द्रहसों निकसी, सरिता सम ह्वै श्रुति सिंधु समानी ॥ यातें अनंत नयातम लच्छन, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी । बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि, सदा जगमांहि जगे जिनवानी ॥ ३ ॥

छप्पय छंद ।

हौं निहचै तिहुँकाल, शुद्ध चेतनमय मूरति । पर-परिनतिसंयोग, भई जड़ता विस्फूरति ॥ मोह कर्म पर

हेतु पाइ, चेतन पर-रच्चै । ज्यों धतूर रसपान, करत नर बहु विध नच्चै ॥ अब समयसार-वर्णन करत, परम सुद्धता होउ मुझ । अनयास बनारसिदास कहि, मिटहु सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ४ ॥

सवैया इकतीसा ।

निहचै में रूप एक विवहार में अनेक, याही नै-विरोध में जगत भरमायो है । जग के विवाद नासिवेकों जिन आगम है, जामें स्यादवाद नाम लच्छन सुहायो है ॥ दरसन मोह जाकौ गयो है सहजरूप, आगम प्रमान जाके हिरदैमें आयौ है । अनैसों अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसौ पद पूरन तुरंत तिन पायो है ॥ ५ ॥

सवैया तेईसा ।

ज्यों नर कोउ गिरै गिरसों तिहि, सोइ हितू जु गहै दृढ बांहीं । त्यों बुधकों विवहार भलौ तबलों जबलों शिव प्रापति नांहीं ॥ यद्यपि यों परवान तथापि, सधै परमारथ चेतनमांहीं । जीव अव्यापक है परसों, विवहार सों तौ परकी परछांहीं ॥ ६ ॥

सवैया इकतीसा ।

शुद्धनय निहचै अकेलो आपु चिदानंद, अपने ही गुण परजायकों गहतु है । पूरन विज्ञानघन सोहै विवहार मांहि, नवतत्त्वरूपी पंचद्रव्यमें रहतु है ॥ पंच द्रव्य नवतत्त्व न्यारे

जीव न्यारौ लखै, सम्यकदरस यहै और न गहतु है। सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहतु है ॥ ७ ॥

सवैया इकतीसा।

जैसें तृनकाठ बांस आरने इत्यादि और, ईंधन अनेक विधि पावक में दहिये । आकृति विलोकत कहावे आगि नानारूप, दीसै एक दाहक सुभाव जब गहिये ॥ तैसें नव तत्त्व में भयो है बहुभेषी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये । जाही छिन चेतना शकतिको विचार कीजे, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ॥ ८ ॥

सवैया इकतीसा।

जैसें बनवारी में कुधातु के मिलाप हेम, नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है । कसिकै कसौटी लोक निरखै सराफ ताहि, बानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है ॥ तैसै ही अनादि पुदगलसों संयोगी जीव, नवतत्त्वरूप में अरूपी महाधाम है । दीसै उनमानसों उद्योतवान ठौर ठौर, दूसरो न और एक आतमा ही राम है ॥ ९ ॥

सवैया इकतीसा।

जैसें रविमंडलके उदै महिमंडल में, आतप अटल तम पटल विलातु है । तैसें परमातमा को अनुभौ रहत जों लों, तौलों कहुं दुविधा न कहुं पच्छपातु है ॥ नयको न

लेश परवानको न परवेश, निच्छेपके वंसको बिधुंस होतु जातु है। जे जे वस्तु साधक हैं तेउ तहां बाधक हैं, बाकी रागदोष की दशाकी कौन बातु है ॥ १० ॥

अडिल्ल छंद।

आदि अंत पूरन सुभाव संयुक्त है, परस्वरूप परजोग कलपना मुक्त है। सदा एकरस प्रगट कही है जैन में, शुद्ध नयातम वस्तु विराजे वैनमें ॥ ११ ॥

कवित्त छंद।

सतगुरु कहै भव्य जीवनिसों, तोरहु तुरत मोहकी जेल। समकितरूप गहौ अपनौ गुन, करहु शुद्ध अनुभव कौ खेल ॥ पुदगलपिंड भाव रागादिक इनसों नहीं तुमारो मेल। ए जड प्रगट गुपत तुमचेतन जैसे भिन्न तोय अरुतेल ।१२।

सवैया इकतीसा।

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखै शरीरघर भेदज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वासतो। अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखै बंधमें विलासतौ ॥ बंधकोंविदारि महामोह को सुभाउ डारि, आतमको ध्यान करै देखै परगासतो। करमकलंक पंकरहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोकै देव सासतो ॥१३॥

सवैया तेईसा।

शुद्ध नयातम आतम की, अनुभूति विज्ञान विभूति है

सोई। वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई यों सरवङ्ग सदा लखि आपुहि, आतमध्यान करै जब कोई मेटि अशुद्ध विभावदशा तब, सिद्ध सरूप की प्रापति होई १४

सवैया इकतीसा।

अपने ही गुनपरजायसों प्रवाहरूप, परिनयो तिहूं काल अपने अधारसों। अन्तर वाहिर परकासवान एकरस खिन्नता न गहै भिन्न रहै भौ-विकारसों॥ चेतनाके रस सरवंग भरि रह्यो जीव, जैसे लोंन कांकर भर्यो है रस खा-रसों। पूरन सरूप अति उज्जल विज्ञानघन, मोकों होहु प्रगट विशेष निरवारसों ॥१५॥

कवित्त छंद।

जहँ ध्रुवधर्म कर्मछय लच्छन, सिद्ध समाधि साधि पद सोई। सुद्धपयोग योग महि मण्डित, साधक ताहि कहै सब कोई॥ यों परतच्छ परोच्छस्वरूप, सुसाधक साध्य अवस्था दोई। दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै शिव वंछक थिर होई॥ १६॥

कवित्त छंद।

दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार। निहचै दृष्टि एकरस चेतन, भेदरहित अविचल अविकार॥ सम्यक्दशा प्रमाण उभैनय, निर्मलसमल एकही

वार । यों समकाल जीव की परिनति, कहैं जिनंद गहै गन-धार ॥ १७ ॥

दोहा ।

एक रूप आतम दरब, ज्ञान चरन दृग तीन ।
भेद भाव परिनाम सों, विवहारे सु मलीन ॥ १८ ॥
यदपि समल विवहारसों, पर्यय शक्ति अनेक ।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥१९॥
एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहिं और ।२०।

सवैया इकतीसा ।

जाके पद सोहत सुलच्छन अनंत ज्ञान, विमल विकासवंत ज्योति लहलही है । यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहार में तथापि,एकता न तजै यों नियत अंग कही है ॥ सोहै जीव कैसीहू जुगति के सदीव ताके, ध्यान करिवे कों मेरी मनसा उनही है । जातें अविचल रिद्धि होतु और भांति सिद्धि, नांहि नांहि नांहि यामें धोखा नांहि सही है ॥ २१ ॥

सवैया तेईसा ।

कै अपनौ पद आपु सँभारत, कै गुरुके मुखकी सुनि बानी ।
भेद विज्ञान जग्यो जिनकै प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥
भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोच्छ दशा ठहरानी ।
ते नर दर्पन ज्यों अविकार रहैं थिर रूप सदा सुखदानी ॥

भेद ज्ञान को महिमा । सवैया इकतीसा ।

याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिटौ मोह, लग्यौ है अनादि को पग्यौ है कर्म मलसों । उदै करै भेदज्ञान महारुचि को निधान,उरको उजारौ भारौ न्यारौ दुन्द दलसों ॥ यातैं थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि, कबहों अपनपौ न कहै पुदुगलसों । यहै करतूति यों जुदाई करै जगतसों,पावक ज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों ॥ २३ ॥

परमार्थ शिक्षा । सवैया इकतीसा

बनारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहू भांति कैसेहू के ऐसो काज कीजिए । एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वंस होइ, ज्ञानकों जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये ॥ वाहीको विचार वाको ध्यान यहै कौतूहल, योंही भरि जनम परम रस पीजिए । तजि भववासको विलास सविकाररूप, अंतकरि मोहकों अनंतकाल जीजिए ॥ २४ ॥

तीर्थंकर । सवैयाइकतीसा।

जाके देहदुतिसों दसों दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं । जाको रूप निरखि थकित महारूपवंत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं ॥ जाकी दिव्य धुनि सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लच्छन अनेक आइ ढुके हैं । तेई जिनराज जाके कहे विवहार

गुन, निहचै निरखि सुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥ २५ ॥

सवैया इकतीसा।

जामें बालपनो तरुनापौ वृद्धपनो नांहिं, आयुपरजंत महारूप महाबल है। बिनाहि जतन जाके तनमें अनेक गुन, अतिसै विराजमान काया निरमल है ॥जैसे बिन पवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है। ऐसो जिनराजजयवंत होउ जगत में, जाकी शुभगति महा सुकृति को फल है ॥ २६ ॥

जिनराज का यथार्थ रूप। दोहा।

जिनपद नाहिं शरीरको, जिनपद चेतन मांहि।
जिन वर्नन कछु और है, यह जिनवर्नन नांहि ॥२७॥

पुद्गल और चेतन का स्वभाव-दृष्टान्त। सवैया इकतीसा

ऊंचे ऊंचे गढ़के कंगूरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक गीलवेकों दांत दियो है। सोहै चहूँ ओर उपवनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि-लोक घेर लियो है ॥ गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पताल जल पियो है। ऐसो है नगर यामें नृपको न अंग कोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है ॥ २८ ॥

तीर्थङ्करके निश्चय स्वरूप की स्तुति।

जामें लोकालोक के सुभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान

सकति विमल जैसी आरसी। दर्शन उदोत लियो अंतराय अन्त कियो, गयो महामोह भयो परम महारिसी। संन्यासी सहज जोगी जोग सों उदासी जामें, प्रकृति पचाशी लगि रही जरि छारसी। सोहै घटमंदिर में चेतन प्रकटरूप, ऐसौ जिनराज ताहि बंदत बनारसी॥ २६॥

निश्चय और व्यवहार नयकी अपेक्षा शरीर और जिनवरका भेद।

तन चेतन विवहार एकसे, निहचै भिन्न भिन्न हैं दोइ।
तनकी थुति विवहार जीव थुति, नियत दृष्टि मिथ्याथुति सोइ॥
जिनसो जीव जीवसो जिनवर, तन जिन एक न मानै कोइ।
ता कारन तनकी संस्तुतिसों, जिनवरकी संस्तुति नहिं होइ॥

वस्तु स्वरूप की प्राप्ति में गुप्त लक्ष्मी का दृष्टांत।

ज्यों चिरकाल गड़ी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी। कोउ उखारि धरै महि ऊपरि, जे दृगवंत तिन्है सब सूझी॥ त्यों यह आतमकी अनुभूति पड़ी जड़ भाव अनादि अरूझी। नै जुगतागम साधि कही गुरु, लक्षन-वेदि विचक्षन बूझी॥ ३१॥

भेदविज्ञान की प्राप्तिमें धोबीके वस्त्रका दृष्टांत।

जैसें कोउ जन गयौ धोबी के सदन तिन्न, पहिर्यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है। धनी देखि कह्यो भैया यहु तो हमारो वस्त्र, चीन्हें पहिचानत ही त्याग भाव लह्यो

है ॥ तैसे ही अनादि पुद्गलसों संयोगी जीव, संगके ममत्वसों विभावतामें बह्यौ है। भेदज्ञान भयौ जब आपापर जान्यो तब, न्यारौ परभावसों स्वभाव निज गह्यौ है ॥ ३२ ॥

निजात्मा का सत्य स्वरूप।

कहै विचच्छण पुरुष सदा मैं एक हों। अपने रस सों भरयो आपनी टेक हों ॥ मोह कर्म मम नांहि नांहि भ्रम कूप है। शुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है ॥ ३३ ॥

तत्वज्ञान होने पर जीवकी अवस्थाका वर्णन।

तत्वकी प्रतीति सों लख्यौ है निजपर गुन, दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयौ है। विसद विवेक आयौ आछौ विसराम पायौ, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयौ है॥ कहत बनारसी गहत पुरुषारथकों, सहज सुभावसों विभाउ मिटि गयोहै। पन्नाके पकायें जैसें कंचन विमल होत, तैसें शुद्ध चेतन प्रकाशरूप भयो है ॥ ३४ ॥

वस्तुस्वभावकी प्राप्तिमें नटीका दृष्टान्त।

जैसै कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरण, आवति अखारे निशि आड़ौ पट करिकै। दुहू ओर दीवटि सँवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोग देखैं दृष्टि धरिकै॥ तैसें ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेदि करि, उमग्यो प्रकट रह्यो तिहुँलोक

भरिकैं। ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगतजीव शुद्धता सँभारै जगजालसों निसरिकैं ॥ ३५ ॥

इति श्री नाटकसमयसारका जीवद्वार समाप्त।

अजीवद्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

जीव तत्व अधिकार यह, कह्यौ प्रकट समुझाइ।
अब अधिकार अजीवकौ, सुनो चतुर मन लाइ ॥१॥

मंगलाचरण। सवैया इकतीसा

परम प्रतीति उपजाइ गनधर कीसी, अंतर अनादिकी विभावता विदारी है। भेद-ज्ञान दृष्टिसों विवेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है॥ करमकौ नास करि अनुभौ अभ्यासधरि, हिएमें हरषि निज उद्धता सँभारी है। अंतराय नास भयो शुद्ध परकास थयो, ज्ञानकौ विलास ताकों वंदना हमारी है ॥ २ ॥

पारमार्थिक शिक्षा। सवैयाइकतीसा।

भैया जगवासी तू उदासी व्है के जगत सों, एक छः महीना उपदेश मेरो मानुरे। और संकलप विकलप के

विकार तजि, बैठके एकंत मनएक ठौर आनुरे ॥ तेरो घट सर तामें तूही है कमल ताकौ, तूही मधुकर है सुवास पहिचानुरे । प्रापति न ह्वै है कछु ऐसौ तू विचारतु है, सही ह्वै है प्रापति सरूप यौंही जानुरे ॥ ३ ॥

जीव और पुद्गल । दोहा ।

चेतनवन्त अनंत गुण, सहित सुआतम राम ।
याते अनमिल और सब, पुद्गल के परिणाम ॥४॥

आत्मज्ञानका परिणाम । कवित्त छंद ।

जब चेतन सँभारि निज पौरुष, निरखै निज दृग सों निज मर्म । तब सुखरूप विमल अविनाशिक जानै जगत शिरोमनि धर्म ॥ अनुभौ करै शुद्ध चेतन कौ, रमै सुभाव वमै सब कर्म । इहि विधि सधै मुक्तिकौ मारग अरु समीप आवै शिव शर्म ॥ ५ ॥

जड़चेतनकी भिन्नता । दोहा ।

वरनादिक रागादि यह, रूप हमारौ नांहि ।
एक ब्रह्म नहिं दूसरौ, दीसे अनुभव मांहि ॥ ६ ॥

देह जीवकी भिन्नता ।

खांड़ौ कहिये कनककौ, कनक म्यान संयोग ।
न्यारौ निरखत म्यानसों, लोह कहैं सब लोग ॥७॥
वरनादिक पुद्गल दशा, धरै जीव बहु रूप ।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ८ ॥

जीव, देहकी भिन्नतापर दृष्टान्त।

ज्यों घट कहिए घीवकौ, घटकौ रूप न घीव।
त्यों वरनादिक नामसौं, जड़ता लहै न जीव॥९॥

आत्माका स्वरूप।

निरावाध चेतन अलख, जानै सहज सुकीव।
अचलअनादि अनंत नित, प्रकट जगतमें जीव॥१०॥

अनुभव। सवैयाइकतीसा

रूप-रसवंत मूरतीक एक पुद्‌गल, रूप बिनु औरु यौं अजीव दर्व दुधा है। च्यारि हैं अमूरतीक जीवभी अमूरतीक, याहीतें अमूरतीक-वस्तु-ध्यान मुधा है। औरसौं न कबहूं प्रकट आपु आपुही सौं, ऐसौ थिर चेतनसु-भाउ शुद्ध सुधा है। चेतनकौ अनुभौ आराधै जग तेई जीव, जिन्ह कौं अखण्डरस चाखिवेकी छुधा है॥ ११॥

मूढ़स्वभाव। सवैया तेईसा

चेतन जीव अजीव अचेतन, लच्छन भेद उभै पद न्यारे।
सम्यक्-दृष्टि उद्योत विचच्छण, भिन्न लखै लखिकें निरवारे॥
जे जग मांहि अनादि अखंडित, मोह महामद के मतवारे।
ते जड़ चेतन एक कहैं, तिन्हकी फिरि टेक टरै नहिं टारे॥

ज्ञाता विलास। सवैया तेईसा

या घटमें भ्रमरूप अनादि, विसाल महा-अविवेक अखारौ। तामहि और सरूप न दीसत, पुग्गल नृत्य करै

अतिभारौ। फेरत भेष दिखावत कौतुक, सौंज लिए बरनादि पसारौ। मोहसों भिन्न जुदौ जड़ सों, चिनमूरति नाटक देखनहारौ ॥ १३ ॥

भेद विज्ञान का परिणाम। सवैया इकतीसा।

जैसें करवत एक काठ बीच खंड करै, जैसें राजहंस निरवारै दूध जलकों। तैसें भेदज्ञान निज भेदक शकतिसेती भिन्न २ करै चिदानन्द पुद्गलकों॥ अवधिकों धावै मन-पर्यै की अवस्था पावै, उमगि कें आवै परमावधि के थलकों। याही भांति पूरनसरूप कौ उदोत धरै, करै प्रतिबिंबित पदा-रथ सकलकों॥ १४ ॥

इति नाटकसमयसारकौ अजीवद्वार समाप्त भया।

—:—

कर्त्ता कर्म क्रियाद्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

यह अजीव अधिकार कौ, प्रगट बखानौ मर्म।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्त्ता किरिया कर्म॥ १

भेदविज्ञानमें जीव कर्मका कर्त्ता नहीं है, निजस्वभावका कर्त्ता है।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक, दूसरो न और मैं ही करता करमकौ। अंतर-विवेक आयौ आपा-पर-भेद पायौ, भयौ बोध गयौ मिटि भारत भरमकौ॥ भासै छहों

दरबके गुणपरजाय सब, नासे दुख लख्यौ सुख पूरन परम कौ। करमकौ करतार मान्यो पुदगल पिंड, आप करतार भयौ आतम धरम कौ ॥२॥ जाही समै जीव देह बुद्धिकौ विकार तजै, वेदत सरूप निज भेदत भरम कौं। महा-परचंड मति मंडन अखंड रस, अनुभौ अभ्यासि परकासत परमकौं ॥ ताही समै घटमें न रहै विपरीत भाव, जैसैं तम नासै भानु प्रगटि धरम कौं। ऐसी दशा आवै जब साधक कहावै तब, करता ह्वै कैसे करै पुद्गल करमकौं ॥ ३ ॥

आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता दृष्टा है–

जग में अनादिकौ अज्ञानी कहै मेरौ कर्म, करता मैं याकौ किरिया कौ प्रतिपाखी है। अंतर सुमति भासी योग सों भयौ उदासी, ममता मिटाइ परजाय-बुद्धि नाखी है ॥ निरभै सुभाव लीनो अनुभौके रस भीनौ, कीनौ व्यवहार दृष्टि निहचै में राखी है। भरम की डोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीति जोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

भेदविज्ञानी जीव लोगों को कर्म का कर्ता दिखता है
पर वह वास्तवमें अकर्ता है। सवैया इकतीसा

जैसो जो दरब ताके तैसे गुन परजाय, ताहीसों मिलत पै मिलै न काहु आनसों। जीव वस्तु चेतन करम जड़ जाति भेद, अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरै कानसों ॥ ऐसो सुवि-

वेक जाकै हिरदै प्रगट भयौ, ताकौ भ्रम गयौ ज्यों तिमिर भागौ भानसौं। सोई जीव करम कौ करतासौ दीसैपै, अकरता कह्यौ है शुद्धताके परमानसौं ॥ ५ ॥

जीव और पुद्गल के जुदे २ स्वभाव । छप्पय छंद ।

जीव ज्ञानगुण सहित, आपगुण-परगुण-ज्ञायक। आपा परगुन लखै नांहि पुग्गल इहि लायक। जीव दरव चिद्रूप, सहज पुद्गल अचेत जड़, जीव अमूरति मूरतीक पुद्गल अन्तर बड़ ॥ जबलग न होय अनुभौ प्रगट, तबलग मिथ्या मति लसै। करतार जीव जड करमकौ, सुबुधि विकास यहु भ्रम नसै ॥ ६ ॥

कर्ता कर्म और क्रिया का स्वरूप । दोहा ।

करता परिनामी दरब, करम रूप परिनाम।
किरिया परजै की फिरनि, वस्तु एक त्रय नाम ॥७॥

कर्ता कर्म और क्रिया एकत्व ।

कर्त्ता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार।
नाम-भेद बहु विधि भयौ, वस्तु एक निरधार ।८॥
एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोइ।
दुधा दरब सत्ता सधी, एक भाव क्यों होइ ॥ ९ ॥

कर्ता कर्म और क्रिया पर विचार । सवैया इकतीसा ।

एक परिनाम के न करता दरब दोय, दोय परिनाम

एक दर्ब न धरतु है। एक करतूति दोइ दर्ब कबहूँ न करै, दोइ करतूति एक दर्ब न करतु है॥जीव पुद्गल एकखेतअवगाही दोउ, अपने २ रूप कोउ न टरतु है। जड़ परिनामनि कौ करता है पुद्गल, चिदानन्द चेतन सुभाउ आचरतु है।

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

महा धीठ दुख को वसीठ परदर्बरूप, अंधकूप काहु पै निवार्यो नहिं गयौ है। ऐसौ मिथ्याभाव लग्यौ जीवकौ अनादिहीकौ, याही अहंबुद्धि लिये नानाभांति भयौ है॥ काहू समै काहूकौ मिथ्यात अंधकार भेदि, ममता उछेदि शुद्ध भाव परिनयौ है। तिनही विवेक धारि बंधकौ बिलास डारि, आतम सकतिसों जगत जीति लयौ है॥ ११ ॥

जैसा कर्म वैसा कर्ता। सवैया इकतीसा।

शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन, दुहूँकौ करतार जीव और नहिं मानिये। कर्मपिंडकौ विलास वर्न रस गंध फास करता दुहूँकौ पुद्गल परवानिये॥ ताते वरनादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गलरूप जानिये। समल विमल परिनाम जे जे चेतन के, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये॥ १२ ॥

भेदज्ञानका मर्म मिथ्यादृष्टि नहीं जानता।

जैसे गजराज नाज घास के गरासकरि, भच्छत सुभाय

नहिं भिन्नरस लियो है । जैसे मतवारो नहिं जानै सिखरनि स्वाद, जुङ्गमें मगन कहै गऊ दूध पियो है ।। तैसे मिथ्या मति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुण्य सों सहज सुन्न हियो है । चेतन अचेतन दुहूको मिश्रपिंड लखि, एक-मेक मानै न विवेक कछु कियो है ।। १३ ।।

जीव को कर्म का कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है ।

जैसे महाधूप की तपति में तिसायो मृग, भरमसों मिथ्याजल पीवनकों धायो है । जैसे अंधकार मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपि सरप मानि आयो है ।। अपने सुभाय जैसे सागर सुथिर सदा, पवन संजोग सों उछरि अकुलायो है । तैसे जीव जड़सों अव्यापक सहज रूप, भरम सों करम को करता कहायो है ।। १४ ।।

भेद विज्ञानी जीव कर्म का कर्ता नहीं है ।

जैसे राजहंस के वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है । तैसे समकिती की सुदृष्टिमें सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है ।। जब शुद्धचेतना कौ अनुभौ अभ्यासे तब, भासै आपु अचल न दूजो और सीर है । पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ।। १५ ।।

मिले हुये जीव और पुद्गल का पृथक्पना ।

जैसे उसनोदकमें उदक सुभाउ सीरो, आगिकी उसनता

फरस ज्ञान लखिये। जैसैं स्वाद व्यंजन मैं दीसत विविध-रूप, लौनकौ स्वाद खारो जीभ ज्ञान चखिये। तैसें घट पिंडमें विभावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये। भरमसों करमको करता है चिदानंद, दरव विचार करतार भाव नखिये ॥ १६ ॥

पदार्थ अपने स्वभाव का कर्त्ता है। दोहा।

ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान।
दरब करम पुद्गल करै, यह निहचै परवान ॥१७॥

ज्ञानका कर्त्ता जीव ही है, अन्य नहीं है।

ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहिं और।
दर्व कर्म चेतन करै, ये विवहारी दौर ॥ १८ ॥

इस विषय में शिष्य की शंका। सवैया तेईसा।

पुद्गल कर्म करै नहिं जीव, कही तुम मैं समुझी नहिं तैसी। कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी ॥ आपुहि आपु मिलै बिछुरै जड़, क्यों करि मो मन संशय ऐसी। शिष्य संदेह निवारन कारन, बात कहै गुरु है कछु जैसी ॥ १९ ॥

शंका का समाधान।

पुद्गल परिनामी दरब, सदा परिनमै सोय।
याते पुद्गल करमकौ, पुदगल कर्त्ता होय ॥ २० ॥
जीव चेतना संजुगत, सदा पूरण सब ठौर।

तातें चेतन भावकौ, करता जीव न और ॥ २१ ॥

शिष्यकापुनः प्रश्न । अडिल्ल छंद

ज्ञानवन्त कौ भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीकौ भोग बंध फल देतु है ॥ यह अचरज की बात हिये नहिं आवही । बूझै कोऊ शिष्य गरू समुझावही ॥ २२ ॥

ऊपर की हुई शंका समाधान । सवैया इकतीसा ।

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दोहू कर्मबंध पै दुहूको एक खेतु है । ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पै, परिनाम भेद न्यारो २ फल देतु है ॥ ज्ञानवन्त करनी करै पै उदासीन रूप, ममता न धरै तातैं निर्जरा कौ हेतु है । वहै करतूति मूढ़ करै पै मगनरूप, अन्ध भयौ ममता सों बंधफल लेतु है ॥ २३ ॥

मिथ्यात्वी के कर्त्तापने की सिद्धि पर कुंभकार का दृष्टान्त ।

ज्यों माटीमें कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव ॥ त्यों पुदगल परवानु, पुंज वरगना भेष धरि । ज्ञानावरनादिकसरूप विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त वहिरातमा, गहि संसै अज्ञानमति । जगमांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति ॥ २४ ॥

जीवको अकर्त्ता मानकर आत्मध्यान करनेकी महिमा ।

जे न करैं नयपच्छ विवाद, धरै न विषाद अलीक न भाखैं।

जे उदवेग तजैं घट अन्तर, शीतलभाव निरन्तर राखैं ॥
जे न गुनी गुनभेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखैं ।
ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखण्डित ज्ञान सुधारस चाखैं

जीव निश्चयनयसे अकर्त्ता और व्यवहार से कर्ता है ।

विवहार दृष्टि सों विलोकत बँध्यो सो दीसै, निहचै निहारत न बांध्यो यह किनही । एकपच्छ बंध्यो एक पच्छ सों अबध सदा, दोऊ पच्छ अपने अनादि धरे इन ही ॥ कोऊ कहै समल विमल रूप कोऊ कहै, चिदानन्द तैसोई बखान्यो जैसो जिनही । बंध्यो मानै खुल्यो मानै दुहूनको भेद जानै, सोई ज्ञानवन्त जीवतत्व पायो तिनही॥ २६ ॥

समरसी की प्रशंसा

.प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय, दुहुको फलावत अनंत भेद फलैं हैं । ज्यों २ नय फलैं त्यों त्यों मनके कल्लोल फलैं, चंचल सुभाव लोकालोकलौं उछलैं हैं । ऐसी नयकच्छ ताको पच्छ तजि ज्ञानी जीव, समरसी भये एकतासों नहिं टलै हैं । महामोह नासै शुद्ध अनुभौ अभ्यासि निज बल परगासै सुखरासि माहिं रलै हैं ॥ २७ ॥

सम्यग्ज्ञानसे आत्मस्वरूप की पहिचान होती है सवैया इकतीसा ।

जैसे काहू बाजीगर चौहटे बजाइ ढोल, नानारूप धरिकें भगल विद्या ठानी है । तैसे मैं अनादिको मिथ्यात की तरंग-

निसों, भरममें धाइ बहुकाय निज मानी है। अब ज्ञानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनी पराई सबसोंज पहिचानी है। जाके उदै होत परवान ऐसी भांति भई, निहचै हमारी ज्योति सोई हम जानी है॥ २८ ॥

ज्ञानी का आत्म नुभवमें विचार।

जैसे महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसे लीनहोइ जलमें। तैसे शुद्ध आतम दरबपरजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे जिन थल में॥ ऐसे अविकलपी अ-जलपी अनंदरूपी, अनादी अनंत गहिलीजे एक पलमें। ताको अनुभव कीजे परम पिऊष पीजे, बंध को विलास डारि दीजे पुदगल में॥ २९ ॥

आत्मानुभव की प्रशंसा। सवैया इकतीसा।

दरवकी नय परजाय नय दोऊ नय, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोष है। शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट तातें अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोष है॥ अनुभौप्रवान भगवान पुरुष पुरान, ज्ञानऔ विज्ञानघन महासुख पोख है। परम पवित्र योंही अनुभौ अनंत नाम, अनुभौ विना न कहूँ और ठौर मोख है॥ ३० ॥

अनुभवके अभावमें संसार और सद्भावमें मोक्ष है इसपर दृष्टान्त

जैसे एक जल नानारूप दरबानुयोग, भयौ बहु भांति

पहिचान्यो न परतु है । फिरि काल पाइ दरवानुयोग दूरि होत अपने सहज नीचे मारग ढरतु है ॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभाव तासों, गति योनि भेष भव भांवरि भरतु है । सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंधकी जुगति भानि मुकति करतु है ॥ ३१ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव कर्म का कर्ता है। दोहा।

निशिदिन मिथ्याभाव बहु, धरै मिथ्याती जीव ॥
तातैं भावित करमकौ, करता कह्यौ सदीव ॥ ३२ ॥

मिथ्यात्वी जीव कर्मका कर्ता और ज्ञानी अकर्ता है । चौपाई ।

करै करम सोई करतारा, जो जानै सौ जाननहारा ।
जो कर्ता नहिं जानै सोई, जानै सो करता नहिं होई ॥३३॥

जो ज्ञानी है वह कर्ता नहीं है । सोरठा ।

ज्ञान मिथ्यात न एक, नहिं रागादिक ज्ञानमहि ।
ज्ञानकरम अतिरेक, ज्ञाता सो करता नहीं ॥ ३४ ॥

जीव कर्म का कर्ता नहीं है । छप्पय छंद ।

करमपिंड अरु राग भाव, मिलि एक होंहि नहिं । दोऊ भिन्न स्वरूप वसहिं, दोऊ न जीव महिं ॥ करम पिंड पुग्गल, विभाव रागादि मूढ़ भ्रम । अलख एक पुग्गल अनंत, किमि धरहि प्रकृति सम । निज निज विलास युत जगतमहि जथा सहज परिनमहि तिम । करतार जीव जड़ करमको,

मोहविकल जन कहहि इम ॥ ३५ ॥

शुद्ध आत्मानुभव का माहात्म्य । छप्पय छंद ।

जीव मिथ्यात न करै भाव नहिं धरै भरममल। ज्ञान ज्ञान रस रमै, होइ करमादिक पुद्गल॥ असंख्यात परदेश सकति, जगमगे प्रगट अति। चिद्विलास गंभीर धीर, थिरर है विमल मति॥ जबलगि प्रबोध घटमहि उदित तब लगि अनय न पेखिये। जिमि धरमराज वरततंपुर, जहंतहं नीति परेखिये

इति नाटकसमयसार कर्ताकर्मक्रियाद्वार समाप्त—

पापपुण्यद्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

करता क्रिया करमकौ, प्रगट बखान्यौ मूल ।
अब बरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥ १ ॥

मंगलाचरण—कवित्त ।

जाके उदै होत घटअंतर, बिनसै मोह महातम रोक। शुभ अरु अशुभ करमकी दुविधा, मिटै सहजदीसै इकथोक॥ जाकी कला होतु संपूरन, प्रतिभासै सब लोक अलोक। सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीस नवाइ देतु पग धोक॥

पुण्य पाप को समानता। सवैया इकतीसा।

जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बांभन कै एक घर राख्यौ है। बांभन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल कहायो तिन मद्य मांस चाख्यो है॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगलपुत्र एक पाप एक पुण्य नाम भिन्न भाख्यो है। दुहों माहिं दौरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञानवंत नहिं कोउ अभिलाख्यो है॥ ३॥

शंका। चौपाई।

कोऊ शिष्य कहै गुरुपांहीं, पापपुण्य दोऊ सम नाहीं।
कारन रस सुभावफल न्यारे। एकअनिष्ट लगैइकप्यारे॥

सवैया।

संकिलेस परिनामनिसों पाप बंध होइ, विशुद्धसों पुन्य बंध हेतुभेद मानिये। पाप के उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उद सातामिष्ट रसभेद जानिये॥ पाप संकिलेस रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दूहूको सुभाउ भिन्न भेद यों बखानिये। पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय, ऐसौ फल भेद परतच्छ परमानिये॥ ५॥

शंका का समाधान। सवैया इकतीसा।

पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुग्गलको पेखिये। संकिलेस विशुद्धि सहज दोऊ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये॥ कारना-

दि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान-दृष्टिमें न लेखिये। दोऊ महा अन्धकूप दोऊ कर्म बन्धरूप दुहूको विनास मोख मारगमें देखिये ॥ ६ ॥

शुद्धोपयोग ही उपादेय है।

सीलतप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है। कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है॥ ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरम में करम त्याग जोग है। भौ जल तरैया राग द्वेषको हरैया महा, मोखको करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

शिष्य गुरु प्रश्नोत्तर।

शिष्य कहै स्वामी तुम करनी अशुभ शुभ, कीनी है निषेध मेरे संसै मनमांही है। मोखके सधैया ज्ञाता देस-विरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निरावलंब नांही है॥ कहै गुरु करमको नास अनुभौ अभ्यास,ऐसो अवलंब उन हीको उन पांही है। निरुपाधि आतम समाधि सोइ शिवरूप, और दौर धूप पुद्गल परछांही है ॥ ८ ॥

मुनि श्रावक की दशामें बंध और मोक्ष दोनों हैं।

मोक्षसरूप सदा चिनमूरति बंधमई करतूति कही है।
जावतकाल वसै जहां चेतन, तावत सो रसरीति गही है॥

आतमको अनुभव जबलों, तबलों शिवरूप दसा निबही है।
अन्ध भयो करनी जब ठानत,बंध विथा तब फैल रही है

मोक्षकी प्राप्ति अन्तर्दृष्टिसे है । सोरठा ।

अन्तर दृष्टि लखाउ, निज सरूपको आचरण ।
ए परमातम भाउ, शिवकारन एई सदा ॥ १० ॥

बाह्य दृष्टि से मोक्ष नहीं है ।

करम शुभाशुभ दोइ, पुद्गलपिंड विभावमल ।
इनसों मुकति न होइ, नहिं केवल पद पाइए ॥ ११ ॥

शिष्य गुरु प्रश्न उत्तर । सवैया इकतीसा ।

कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध, शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी । गुरु कहै जबलों क्रियाको परिणाम रहै, तबलों चपल उपयोग योग धरनी । थिरता न आवै तोलों शुद्ध अनुभौ न होइ, याते दोऊ क्रिया मोखपंथ की कतरनी । बंध की करैया दोऊ दुहू में न भली कोऊ, बाधक विचारि मैं निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२ ॥

ज्ञान मुक्ति का कारण है । सवैया इकतीसा ।

मुक्तिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादि को करम मांहि लुक्यो है । एते परि कहै जो कि पाप बुरा पुण्य भलो, सोइ महामूढ मोक्ष मारगसों चुक्यो है ॥ सम्यक् सुभाव लिये हिये में प्रगट्यो ज्ञान, उरध उमँगि

चल्यो काहूपे न रुक्यो है। आरसी सो उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूपह्वै के कारजको ढुक्यो है ॥ १३ ॥

ज्ञान और शुभ अशुभ धारा। सवैया इकतीसा।

जौलों अष्टकर्म को विनास नाहीं सर्वथा, तौलों अंतरातमा में धारा दोइ वरनी। एक ज्ञान धारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी। इतनो विशेष जु करम धारा बंधरूप, पराधीन सकति विविधि बंध करनी। ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्ष की करनहार, दोष की हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

यथायोग्य कर्म और ज्ञानसे मोक्ष है। सवैया इकतीसा।

समुझै न ज्ञान कहै करम किये सों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहलमें। ज्ञानपक्ष गहै कहै आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ बूडे हैं चहलमें। जथायोग करम करै पै ममता न धरै, रहै सावधान ज्ञान ध्यान की टहल में ॥ तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरै जीव, जिन्हको निवास स्यादवाद के महल में ॥ १५ ॥

मूढ तथा विचक्षण क्रिया। सवैया इकतीसा।

जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और, तैसे मूढप्राणी विपरीतता धरतु है। अशुभ करमबंध कारन बखानै मानै, मुकतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥ अंतर सुदृष्टि भई

मूढता बिसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है। करनी सों भिन्न रहै आतम सरूप गहै, अनुभौ अरंभि रस कौतुक करतु है ॥ १६ ॥

इति नाटकसमयसारका पुन्यपापएकत्वकथन संपूर्ण।

———

आस्रव द्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

पुन्य पाप की एकता, बरनी अगम अनूप।
अब आस्रव अधिकार कछु, कहौं अध्यातमरूप ॥१॥

सम्यग्ज्ञान को नमस्कार। सवैया इकतीसा।

जे ते जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिके। महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा रोपि रनथंभ ठाढो भयो मूछ मोरिके॥ आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके। आस्रव पछार्यो रन-थंभ तोरि डार्यो ताहि, निरखि बनारसी नमत कर जोरिके ॥२॥

द्रव्यास्रव, भावास्रव और सम्यग्ज्ञान का लक्षण। सवैया तेईसा।

दर्वितआस्रव सो कहिए जहिं पुग्गल जीवप्रदेस गरासै। भावितआस्रव सो कहिए जहं राग विरोध विमोह

विकासै ॥ सम्यक पद्धति सो कहिये जहं दर्वित भावित आस्रव नासै । ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक अंतर बाहिर और न भासै ॥३॥

ज्ञाता निरास्रवी है । चौपाई छंद ।

जो दरवास्रवरूप न होई, जहं भावास्रव भाव न कोई । जाकी दशा ज्ञानमय लहिये, सो ज्ञातार निरास्रव कहिये ॥४॥

सम्यग्ज्ञानी निरास्रव रहता है । सवैया इकतीसा ।

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धिपूरवक, तिह परिनामनिकी ममता हरतु है । मनसों अगोचर अबुद्धिपूर्वकभाव, तिन्हके विनासवेको उद्यम धरतु है । याहि भांति परपरिनतिको पतन करे, मोखको यतन करै भौजल तरतु है । ऐसे ज्ञानवन्त ते निरास्रव कहावै सदा, जिन्हको सुजस सुविचच्छण करतु है ॥ ५ ॥

शिष्य का प्रश्न । सवैया तेईसा ।

ज्यों जग में विचरै मतिमंद, सुछन्द सदा वरतै बुध तैसे । चंचल चित्त असंजित वैन,शरीर सनेह जथावत जैसे ॥ भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करै जहां ऐसे । पूछत शिष्य आचारजसों यह, सम्यकवन्त निरास्रव कैसे ६

शिष्य की शंका का समाधान । सवैया इकतीसा ।

पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आइ

नाना भांति रस देत हैं। केई शुभ साता केई अशुभ असातारूप, दुहु सों न राग न विरोध समचेत हैं॥ यथा-योग क्रिया करै फलकी न इच्छा धरै, जीवन मुकतिकौ विरुद् गहिलेत हैं। यातें ज्ञानवंतकों न आस्रव कहत कोऊ मुद्धतासों न्यारे भये सुद्धता समेत हैं॥७॥

राग द्वेष मोह और ज्ञान का लक्षण। दोहा।

जो हित भाव सुराग है, अनहितभाव विरोध।
भ्रामकभाव त्रिमोह है, निर्मलभाव सुबोध॥८॥

राग द्वेष मोह ही आस्रव है।

राग विरोध विमोह मल, एई आस्रव मूल।
एई कर्म बढाइ के, करै धरम की भूल॥९॥

सम्यग्यदृष्टि जीव निरास्रव है।

जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम।
यातें सम्यकवंतको, कह्यो निरास्रव नाम॥१०॥

निरास्रवी जीवों का आनन्द। सवैया इकतीसा।

जे कोइ निकट भव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मत भेदि ज्ञान भाव परिनये हैं। जिन्हकी सुदृष्टि में न राग दोष मोह कहूँ, विमल विलोकनि में तीनों जीति लये हैं॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोग की दशामें मिलि गये हैं। तेई बंधपद्धति विडारि परसंग डारि

आपमें मगन है के आपरूप भये हैं ॥११॥

उपशम तथा क्षयोपशम भावों की अस्थिरता। सवैया इकतीसा।

जेते जीव पंडित खयोपशमी उपशमी, तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहार की संडासी है। छिन आग मांहि छिन पानीमांहि तैसे एऊ, छिन में मिथ्यात छिनु ज्ञानकला भासी है॥ जौलों ज्ञान रहै तौलों सिथिल चरन मोह, जैसे कीले नागकी सकति गति नासी है। आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै, ज्यों उकीले नागकी सकति परगासी है॥ १२॥

अशुद्ध नय से बंध और शुद्ध नय से मुक्ति है। दोहा।

यह निचोर या ग्रंथ को, कहै परमरस पोख।
तजै शुद्ध नयबंध है, गहै शुद्ध नय मोख॥१३॥

जीव को बाह्य तथा अंतरंग अवस्था

करमके चक्रमें फिरत जगवासीजीव, ह्वै रह्यो वहिरमुख व्यापत विषमता। अंतर सुमति आई विमल बड़ाई पाई, पुद्गल सों प्रीति टूटी छूटी माया ममता॥ शुद्ध नै निवास कीन्हो अनुभो अभ्यास लीन्हों, भ्रमभाव छांडि दीनों भीनों चित्त समता। अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलम्बि अवलोके राम रमता॥ १४॥

शुद्धआत्मा ही सम्यग्दर्शन है। सवैया इकतीसा

जाके परगास में न दीसे राग दोष मोह, आस्रव मिटत

नहिं बंधको तरस है। तिहुँकाल जामें प्रतिबिंबत अनंतरूप आप हू अनंत सत्तानंततें सरस है ॥ भाव श्रुतज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां बानीको परस है। अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक दरस है ॥ १५ ॥

इति नाटकसमयसारविषे आस्रवद्वार संपूर्ण ।

संवरद्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

आस्रवको अधिकार यह, कह्यो यथावत जेम ।
अब संवर वरनन करों, सुनौ भविक धरि प्रेम ॥१॥

ज्ञान रूप संवर को नमस्कार । सवैया इकतीसा ।

आतमको अहित अध्यातमरहित ऐसो, आस्रव महातम अखंड अण्डवत है। ताको विसतार गिलिबेको परगट भयौ, ब्रह्मंड को विकासी ब्रह्मंडवत है ॥ जामें सबरूप जो सबमें सबरूपसो पै, सबनि सों अलिप्त आकाश खंडवत है। सौहै ज्ञान भानु शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखकों हमारी दंडवत है ॥ २ ॥

भेद विज्ञानका महत्व । सवैया तेईसा ।

शुद्ध सुछंद अभेद अबाधित, भेद-विज्ञान सुतीछन

आरा । अंतरभेद सुभाव विभाव,करे जड़ चेतनरूप दुफारा । सो जिन्हके उरमें उपज्यो,न रुचै तिन्ह को परसँग सहारा । आतमकौ अनुभौ करि ते, हरखैं परखैं परमातम धारा ॥३ ॥

सम्यक्त्व से सम्यग्ज्ञान और आत्मस्वरूपकी प्राप्ति ।

जो कबहूँ यह जीव पदारथ, औसर पाइ मिथ्यात मिटावै । सम्यक धार प्रवाह बहै गुन, ज्ञान उदै मुख ऊरध धावै ॥ तो अभिअंतर दवित भावित, कर्म किलेश प्रवेश न पावै । आतम साधि अध्यातम कौ पथ, पूरण व्है परब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

सम्यग्दृष्टि की महिमा ।

भेदि मिथ्यात सु वेदि महारस, भेद-विज्ञान कला जिन पाई । जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करें उर सौंज पराई ॥ उद्धतरीति फुरी जिनके घट, होतु निरंतर ज्योति सवाई । दे मतिमान सुवर्ण समान,लगे तिनकों न शुभाशुभ काई ॥ ५ ॥

भेदज्ञान संवर, निर्जरा और मोक्षका कारण है । अडिल्लछंद ।

भेदज्ञान संवर-निदान निरदोष है । संवरसौ निरजरा अनुक्रम मोक्ष है ॥ भेद ज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये । यदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥ ६ ॥

आत्मस्वरूप की प्राप्ति होने पर भेदज्ञान हेय है । दोहा ।

भेदज्ञान तबलों भलौ, जबलों मुक्ति न होय ।

परमज्योति परगट जहां, तहां न विकलप कोय ।७॥

भेदज्ञान परम्परा मोक्ष का कारण है। चौपाई।

भेदज्ञानसंवर जिन पायो. सो चेतनशिवरूप कहायो।
भेदज्ञान जिनके घट नाहीं। ते जड़जीव बंधे घटमांही

भेदज्ञान से आत्मा उज्वल होता है। दोहा।

भेद ज्ञान साबू भयो, समरस निरमल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोवै निज गुन चीर ॥ ९ ॥

भेदविज्ञानकी क्रिया के दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे रजसोधा रज सोधके दरब काढ़े, पावक कनक काढ़ि दाहत उपलकों। पंक के गरभमें ज्यों डारिये कुतक फल, नीर करे उज्जल नितारि डारे मलकों॥ दधि को मथैया मथि काढे जैसे माखनकों. राजहंस जैसे दूध पीवै त्यागि जल कों। तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उछेदे परदल कों ॥१०॥

मोक्षका मूल भेदविज्ञान है। छप्पयछंद।

प्रगटि भेद विज्ञान, आपगुण परगुण जानै। परपरिनति परित्यागि, शुद्ध अनुभव थिति ठानै॥ करि अनुभव अभ्यास, सहज संवर परगासै। आस्रव द्वार निरोधि कर्म घन तिमिर विनासै॥ छय करि विभव समभाव भजि, निरविकल्प निज पद गहै। निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर, परम अतींद्रिय सुख लहै ॥११॥

इति नाटकसमयसारका सवरद्वार संपूर्ण।

निर्जरा द्वार।

प्रतिज्ञा। दोहा।

बरनी संवर की दसा, जथा जुगति परवान।
मुक्ति वितरनी निर्जरा, सुनहु भविक धरि कान ॥१॥

मंगलाचरण। चौपाई।

जो संवर पद पाइ अनन्दे, जो पूरव कृत कर्म निकन्दे। जो अफंद व्है बहुरि न फंदे, सो निरजरा बनारसि वंदे ॥२॥

ज्ञानवैराग्यके बलसे शुभाशुभ क्रियाओंसे भी बंध नहीं होता।

महिमा सम्यक ज्ञानकी, अरु विराग बल जोइ।
क्रिया करत फल भुंजते, करमबंध नहिं होइ ॥ ३ ॥

भोग भोगते हुये भी ज्ञानियोंको कर्मकालिमा नहीं लगती।
सवैया इकतीसा।

जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म, कौतुकी कहावै तासों कौन कहै रंक है। जैसे विभचारिनी विचारै विभचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित वंक है॥ जैसे धाइ बालक चुंघाइ करै लालि पालि, जानै ताहि और कौ जदपि वाके अंक है। तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै यातें निकलंक है॥४॥

पुनः

जैसे निशिवासर कमल रहै पंकहिमें, पंकज कहावै पैन वाके ढिग पंक है। जसे मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी सकति वाके बिना विष डंक है॥ जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग, पानी में कनक जैसे काईसों अटंक है। तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै याते निकलंक है॥ ५॥

वैराग्यशक्ति वर्णन। सोरठा।

पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवै समकिती।
करै न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी॥ ६॥

ज्ञान वैराग्यसे मोक्षकी प्राप्ति है। सवैया तेईसा।

सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुन धारै। जासु प्रभाव लखै निज लच्छन, जीव अजीव दशा निरवारै॥ आतमको अनुभौ करि ह्वै थिर, आपु तरै अरु औरनि तारै। साधि सुदर्व लहै शिव सर्म, सुकर्म उपाधि व्यथा वमि डारै॥ ७॥

सम्यग्ज्ञान के बिना सम्पूर्ण चारित्र निस्सार है। सवैया तेईसा।

जो नर सम्यकवंत कहावत, सम्यकज्ञान कला नहिं जागी। आतमअङ्ग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी॥ भेष धरै मुनिराज पटंतर, मोह-महानल अंतर

दागी। सून्य हिये करतूति करै पर, सो सठ जीव न होइ विरागी ॥ ८ ॥

भेदविज्ञानके विना चारित्र निस्सार है । सवैया तेईसा ।

ग्रन्थ रचै चरचै शुभ पन्थ लखै जगमें व्यवहार सुपत्ता ।
साधि संतोष अराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता ॥
नंग धरंग फिरै तजि संग, छकै सरवंग सुधारस मत्ता । ए
करतूति करै सठ पै समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥९॥
ध्यान धरै करि इंद्रियनिग्रह, विग्रहसों न गिनै निज नत्ता ।
त्यागि विभूति विभूति मढै तन, जोग गहै भवभोग विरत्ता ॥
मौन रहै लहि मंद कषाय, सहै बधबंधन होइ न तत्ता ।
ए करतूति करै सठ पै समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥१०॥

चौपाई ।

जो विनु ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो विनु क्रिया मोख पद चाहै । जो विनु मोख कहै मैं सुखिया, सो अजान मूढ़नि में मुखिया ॥ ११ ॥

गुरुका उपदेश अज्ञानी जीव नहीं मानते । सवैया इकतीसा ।

जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश कहै, तुम्हैं इहां सोवत अनन्त काल बीते हैं । जागो व्है सुचेत चित्त समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्ष रस जीते हैं ॥ आवो मेरे निकट बताऊं मैं तुम्हारे गुन, परमसुरस भरे करम

सों रीते हैं॥ ऐसे बैन कहै गुरु तऊ ते न धरै उर, मित्र कैसे पुत्र किधों चित्र कैसे चीते हैं ॥१२॥

जीव की शयन और जाग्रत दशा कहने को प्रतिज्ञा।

एते पर बहुरों सुगुरु, बोले वचन रसाल।
सेन दशा जाग्रत दशा, कहैं दुहूँ की चाल ॥१३॥

जीव की शयन अवस्था। सवैया इकतीसा।

काया चित्रसारी में करम परजंक भारी, माया की संवारी सेज चादर कलपना। सैन करै चेतन अचेनता नींद लिए, मोह की मरोर यहै लोचनको ढपना॥ उदै बलजोर यहै श्वासको सबद घोर, विषै-सुख कारज की दौर यहै सपना। ऐसी मूढदसामें मगन रहै तिहूँकाल, धावै भ्रम जाल में न पावै रूप अपना ॥१४॥

जीव की जाग्रत दशा। सवैया इकतीसा।

चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्यारी इहां झूठी मेरी थपना। अतीत अवस्था सैन निद्रा वहि कोऊ पै,न विद्यमान पलक न यामें अब छपना॥ श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझै, सूझै सब अङ्ग लखि आतम दरपना।त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलि के संभाले रूप अपना ॥ १५ ॥

रीति न बूझै। ध्यान बिना न थमे मनकीगति, ज्ञान बिना शिवपन्थ न सूझै ॥२३॥

ज्ञान की महिमा। सवैया तेईसा।

ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर, ज्योति जगी मति होति न मैली। वाहिज दृष्टि मिटी जिनके हिय, आतम-ध्यान कलाविधि फैली॥ जे जड़ चेतन भिन्न लखै सुविवेक लिये परखै गुनथैली। ते जगमें परमारथ जानि, गहै रुचि मानि अध्यातम सैली॥ २४ ॥

दोहा

बहुविधि क्रियाकलेससों, शिवपद लहै न कोइ।
ज्ञानकला परकाशसों, सहज मोक्षपद होइ॥ २५ ॥
ज्ञान कला घट घट बसे, योग युगतिके पार।
निज निज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार ॥२६॥

अनुभव की प्रशंसा। कुंडलिया छन्द।

अनुभव चिंतामनिरतन, जाके हिय परगास। सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गतिवास॥ दहै चतुर्गतिवास, आसधरि क्रिया न मंडै। नूतन बंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहंडै॥ ताके न गनु विकार, न गनु बहु भार न गनु भव। जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामनि अनुभव॥ २७ ॥

सम्यग्दर्शन की प्रशंसा। सवैया इकतीसा।

जिनके हिएमें सत्य सूरज उदोत भयो, फैली मति किरन मिथ्यात तम नष्ट है। जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों, समतासों प्रीति ममतासों लष्टपुष्ट है॥ जिनके कटाच्छ में सहज मोच्छपथ सधै, साधन निराध जाके तनको न कष्ट है। तिनके करमकी किलोल यह है समाधि, डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है॥ २८॥

परिग्रह के विशेष भेद कथन करने की प्रतिज्ञा।

आतमसुभाउ परभाउकी न सुद्धि ताको, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है। ऐसो अविवेक को निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहालों समुच्चैरूप कह्यो है॥ अब निज पर भ्रम दूरि करिबेके काज, बहुरो सुगुरु उपदेशको उमह्यो है। परिग्रह त्याग परिग्रहको विशेष अंग, कहिबेको उद्यम उदार लहलह्यो है॥ २९॥

सामान्य विशेष परिग्रह का निर्णय। दोहा।

त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार।
विविधवस्तु नाना विरति, यह विशेषविस्तार॥३०॥

परिग्रह में रहते हुये भी ज्ञानी जीव निष्परिग्रह हैं। चौपाई

पूरब करम उदै रस भुंजे, ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे॥
उरमें उदासीनता लहिये, यों बुध परिग्रहवंत न कहिये३१

परिग्रहमें रहनेपर भी ज्ञानी जीवोंको परिग्रहरहित कहनेका कारण। सवैया इकतीसा।

जे जे मनवंछित विलास भोग जगत् में, तेते विनासीक सब राखे न रहत हैं। और जे जे भोग अभिलास चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरूप ह्वै बहत हैं॥ एकता न दुहों मांहि तातें बांछा फुरे नाहि, एसे भ्रम कारज को मूरख चहत हैं सतत रहे सचेत परसों न करे हेत याते ज्ञानवन्तको अवञ्छक कहत हैं॥ ३२॥

परिग्रहमें रहनेपर भी ज्ञानीजीव निष्परिग्रह है, इसपर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे फिटकड़ी लोद हरडेकी पुटबिना स्वेत वस्त्र डारि, ये मजीठरङ्ग नीरमें। भीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल भेदे नहीं अन्तर सफेदी रहै चीरमें। तैसे समकितवन्त राग दोष मोह बिनु, रहे निशिवासर परिग्रह की भीरमें। पूरब करम हरे नूतन न बंध करे, जाचे न जगतसुख राचे न शरीरमें॥ ३३॥

सवैया इकतीसा।

जैसे काहु देसको वसैया बलवन्त नर, जंगलमें जाइ मधु-छत्ताकों गहतु है। वाकों लपटाय चहुँओर मधुमच्छिका पै, कंबलीकी ओट सो अडंकित रहतु है॥ तैसे समकिती शिव सत्ताको सरूप साधे, उदेकी उपाधिकों समाधिसी

कहतु है। पहिरे सहजको सनाह मनमें उछाह, ठाने सुखराह उदवेग न लहतु है॥ ३४॥

ज्ञानी जीव सदा अबंध है। दोहा।

ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोइ।
चितउदास करनी करे, करम बंध नहिं होइ॥ ३५॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास।
मुकति पंथ परगट करै, दीपक ज्ञानविलास॥ ३६॥

ज्ञानरूपी दीपक की प्रशंसा। सवैया इकतीसा।

जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिको नाशकरे पलमें। दसाको न भाग न सनेहको संयोग जामें, मोह अन्धकारको विजोग जाके थलमें॥ जामें न तताई नहिं राग रंकताई रंच, लहलहे समता समाधि जोग जलमें। ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अभंग रूप, निराधार फुरी पै दुरी है पदगलमें॥ ३७॥

ज्ञानकी निर्भयता पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसो जो दरब तामें तैसोही सुभाउ सधे, कोऊ दर्व काहुको सुभाउ न गहतु है। जसे संख उज्वल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसो न दीसे नित उज्जल रहतु है॥ तैसे ज्ञानवन्त नाना भोग परिगह जोग, करतविलास न अज्ञानता लहतु है। ज्ञानकला दूनी होइ दुन्द-दसा सूनी होइ, उनी

होई भौ थिति बनारसी कहतु है ॥ ३८ ॥

विषयवासनाओंसे विरक्त रहनेका उपदेश । सवैया इकतीसा ।

जोलों ज्ञानको उदोत तोलों नहीं बंधहोत,वरते मिथ्यात तब नानाबंधहोहिहै । ऐसोभेद सुनिके लग्यौतू विषैभोगनिसों जोगनिसों उद्यमकी रीतितें बिछोहि है ॥ सुनो भैया संत तू कहै मैं समकितवंत,यहुतो एकंत भगवंतको दिरोहि है, विषैसों विमुख होइ अनुभोदशा अरोहि, मोखसुख टोहि ऐसी तोहि मति सोहि है ॥ ३९ ॥

ज्ञानी जीव विषयों में निरंकुश नहीं रहते । चौपाई ।

ज्ञान कला जिनके घट जागी, ते जग मांहि सहज बैरागी ॥ ज्ञानी मगन विषै सुख मांही, यहु विपरीत संभवै नांही ॥ ४० ॥

ज्ञान और वैराग्य एक साथ ही होते हैं । दोहा।

ज्ञान सकति वैराग्य बल, शिव साधै समकाल ।
ज्यों लोचन न्यारे रहैं, निरखै दोऊ नाल ॥ ४१ ॥

अज्ञानी जीवों की क्रिया बंधके लिये और ज्ञानी जीवों की क्रिया निर्जराके लिये है । चौपाई ।

मूढ कर्मको कर्त्ता होवै, फलअभिलाष धरै फल जोवै ।
ज्ञानी क्रियाकरै फलसूनी, लगै न लेप निर्जरा दूनी ४२

ज्ञानीके अबंध और अज्ञानी के बंधपर कोटक का दृष्टान्त ।

बंधे कर्म सों मूढ़ ज्यों, पाट कीट तन पेम ।
खुलें कर्म सों समकिती, गोरखधन्धा जेम ॥४३॥

ज्ञानी जीव कर्मके कर्त्ता नहीं हैं । सवैया तेईसा ।

जे निज पूरबकर्म उदै सुख भुंजत भोग उदास रहैंगे । जो दुख में न विलाप करैं निरबैर हिए तन ताप सहैंगे ॥ है जिन के दृढ़ आतम ज्ञान क्रिया करिके फल को न चहैंगे । ते सुविचच्छन ज्ञायक हैं तिनकों कर्त्ता हम तो न कहैंगे ॥४४॥

ज्ञानी का विचार । सवैया इकतीसा

जिनकी सुदृष्टि में अनिष्ट इष्ट दोऊ सम, जिनको अचार सुविचार सुभ ध्यान है । स्वारथ कों त्यागी जे लगे हैं परमारथ को, जिनके बनिज में न नफा है न ज्यान है ॥ जिनकी समुझ में शरीर ऐसो मानियतु, धान कौ सो छीलक कृपान कौ सो म्यान है । पारखी पदारथ के साखी भ्रम भारथ के, तेई साधु तिनही को जथारथ ज्ञान है ॥४५॥

ज्ञानी की निर्भयता । सवैया इकतीसा ।

जमकोसो भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहतु है । सुरग निवासी भूमिवासी

औ पतालवासी, सबही को तन मन कांपत रहतु है ॥ उरको उजारो न्यारो देखिये सपत भयसों, डोलतु निशंक भयो आनन्द लहतु है। सहज सुवीर जाको शरीर सासतो ऐसो, ज्ञानी जीव आरज अचारज कहतु है ॥४६॥

सप्तभय के नाम । दोहा ।

इहभवभय परलोकभय, मरन वेदना जात ।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

सप्तभय के पृथक २ स्वरूप । सवैया इकतीसा ।

दसधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति-गमन भय परलोक मानिये। प्राननिको हरन मरन भै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये ॥ रक्षक हमारो कोऊ नांही अनरक्षा भय, चौरभै विचार अनगुप्त मन आनिये। अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधों होइ, ऐसो भय अकस्मात जगत में जानिये ॥४८॥

इस भव के भय निवारण का उपाय । छप्पय छन्द ।

नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरक्खत। आतमअंगअभंग संग, पर धन इम अक्खत ॥ छिनभंगुर संसार, विभव परिवार भार जसु। जहां उतपति तहां प्रलय, जासु संयोग विरह तसु। परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह भव भय उपजै न चित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज,

ज्ञानरूप निरखंत नित ॥४९॥

परभव का भय निवारण करने का उपाय। छप्पय छन्द।

ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोख सुख। इतरलोक मम नांहि, नाहिं जिसमांहि दोष दुख॥ पुन्न सुगति दातार, पाप दुरगतिपददायक। दोऊ खंडित खानि, मैं अखंडित शिवनायक॥ इह विधि विचार परलोक भय, नहिं व्यापक वरते सुखित। ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५०॥

मरण का भय निवारण करने का उपाय। छप्पय छंद।

फरस जीभ नासिका, नैन अरु श्रवन अच्छ इति। मन बच तन बल तीन, सास उस्सास आउ थित॥ ए दस प्राण विनाश, तांहि जग मरण कहीजे। ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे॥ यह चित करत नहिं मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित। ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥५१॥

वेदना का भय निवारण करने का उपाय। छंद।

वेदनवारो जीव जांहि वेदंत सोउ जिय। यह वेदना अभंग, सु तो मम अङ्ग नांहि व्यय॥ करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतिय दुख। दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिरमुख॥ जब यह विवेक मनमहिं धरत, तब न वेदना

भय विदित। ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥५२॥

अनरक्षा का भय निवारण करने का उपाय। छप्पय छंद।

जो स्ववस्तु सत्ता सरूप, जगमहि त्रिकाल गत। तासु विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत॥ सो मम आतम दरब, सरवथा नहिं सहाय धर। तिहिं कारन रक्षक न होइ, भक्षक न कोइ पर॥ जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित। ज्ञानीनिसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ५३॥

चोर भय निवारण करने का उपाय। छप्पय छंद।

परमरूप परतक्ष,जासु लक्षन चिन मण्डित। पर प्रवेश तहां नांहि, मांहि महि अगम अखंडित॥ सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन। ताहि चोर किम गहै, ठौर नहिं लहै और जन॥ चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्तभय उपसमित। ज्ञानी निशङ्क निकलङ्क निज, ज्ञान रूप निरखंत नित॥ ५४॥

अकस्मात भय निवारण करनेका उपाय।

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम। अलख अनादि अनंत अतुल अविचल सरूप मम॥ चिद्‌विलास परगास, बीत विकलप सुख-थानक। जहां दुविधा

नहिं कोइ, होइ तहां कछु न अचानक ॥ जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहिं उदित। ज्ञानी निसंक निकलङ्क निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५५ ॥

सम्यग्दर्शनधारी को नमस्कार। छप्पय छंद।

जो परगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहन्त ध्रुव। विमल ज्ञान अंकूर, जासु घट महि प्रकास हुव ॥ जो पूरव-कृत-कर्म, निर्जरा धार बहावत। जो नव बंध निरोध, मोख मारग मुख धावत ॥ निःशंकतादि जस अष्टगुन, अष्टकर्म अरि संहरत। सो पुरुषविचक्षण तासु पद, बनारसी वन्दन करत।

सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों के नाम। सोरठा।

प्रथम निसंसै जानि, दुतिय अवंछित परिनमन।
तृतिय अङ्गअगिलानि, निर्मलदृष्टि चतुर्थगुन ॥ ५७ ॥
पंच अकथपरदोष, थिरीकरन छट्ठम सहज।
सत्तम वच्छलपोष, अष्टम अङ्ग प्रभावना ॥ ५८ ॥

सम्यक्त्व के आठ अंगों का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

धर्ममें न संसै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभ कों देखि न गिलानि आनै चित में। सांची दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति बोधठानै चित में ॥ प्यार निजरूपसों उछाहकी तरंग उठे, एई आठो अंग जब जागे समकितमें। ताहि समकितकों धरैसा समकितवंत

वहै मोख पावे जो न आवै फिर इत में ॥ ५९ ॥

चैतन्य नट का नाटक । सवैया इकतीसा ।

पूर्व बंध नासै सोतो संगीत कला प्रकाशे,नव बंध रुधि ताल तोरत उछरिके । निसंकित आदि अष्ट अङ्ग संग सखा जोरि समता अलाप चारी करे सुख भरिके ॥ निरजरा नाद-गाजे ध्यान मिरदिंग बाजे,छक्यो महानंद में समाधि रीझि करिके । सत्तारंग भूमिमें मुकत भयो तिहूंकाल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६१ ॥

इति समयसारनाटकविषे निर्जराद्वार संपूर्ण ।

बंधद्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

कही निर्जरा की कथा, शिवपथ साधनहार ।
अब कछु बंध प्रबंधको, कहूँ अल्प विस्तार ॥ १ ॥

मंगलाचरण । सवैया इकतीसा ।

मोह मद पाइ जिनि संसारी विकल कीने, याहीतें अजानुबाहु विरद वहतु है । ऐसो बंधवीर विकराल महा-जाल सम, ज्ञान मंद करे चंदराहु ज्यों गहतु है ॥ ताको बल भंजिवेको घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्यम

महतु है। सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताहि, निरखि बनारसी नमो नमो कहतु है ॥ २ ॥

ज्ञान चेतना और कर्म चेतना का वर्णन । सवैया इकतीसा ।

जहां परमातम कलाको परगास तहां, धरम धरामें सत्य सूरजको धूपहै । जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महाअन्धेर कूप है ॥ फैली फिरै घटासी छटासी घनघटाबीच, चेतनकी चेतना दुहोंधा गुपचूप है बुद्धिसों न गहीजाय बेनसों न कहीजाय, पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है ॥ ३ ॥

कर्मबंध का कारण अशुद्ध उपयोग है । सवैया इकतीसा ।

कर्मजाल वर्गनासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों । चेतन अचेतन की हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंचविषै विषरागसों ॥ कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासों अबंध साधु ज्ञाता विषैभोगसों । इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधै एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४ ॥

। सवैया इकतीसा ।

कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मनवच कायको निवास गति आउमें । चेतन अचेतनकी हिंसा वसै पुद्गलमें, विषैभोग वरते उदेके उरझाउमें ॥ रागादिक शुद्धता

अशुद्धता है अलखकी यहै उपादान हेतु बंधके बढाउमें। याहिते विचच्छन अबन्ध कह्यो तिहू काल, रागदोष मोह-नाहीं सम्यक सुभाउ में ॥ ५ ॥

यद्यपि ज्ञानी अबन्ध हैं तो भी पुरुषार्थ करते हैं।

कर्मजाल-जोग हिंसा-भोगसों न बंधै पै, तथापि ज्ञाता उद्यमी बखान्यो जिनबैन में। ज्ञान-दृष्टि देतु विषै-भोग-निसों हेतु दोऊ, क्रिया एकखेत यों तो बनै नांहि जैनमें उदैबल उद्यम गहै पै फलकौं न चहै, निरदै दसा न होइ हिरदेके नैनमें। आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात मांहि, जहाँ न संभारै जीव मोहनींद सैनमें ॥५॥

उदय की प्रबलता। दोहा।

जब जाको जैसो उदै, तब सो है तिहि थान।
सकती मरोरै जीव की, उदै महा बलवान ॥७॥

उदय की पवित्रता पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे गजराज पर्यौ कर्दमके कुण्डबीच, उद्यम अहूटै पै न छूटै दुख दन्दसों। जैसे लोह-कंटक की कोरसों उरझ्यो मीन, ऐंचत असाता लहै साता लहै संदसो॥ जैसे महाताप सिर वाहिसों गरास्यो नर, तकै निज काज उठि सकै न सुछंदसों। तैसे ज्ञानवंत सब जानै न बसाइ कछू, बंध्यो फिरै पूरब करमफल-फंदसों ॥ ८ ॥

मोक्ष मार्ग में अज्ञानी जीव पुरुषार्थहीन और ज्ञानी पुरुषार्थी होते हैं। चौपाई।

जे जिय मोह नींदमें सोवैं, ते आलसी निरुद्यमि हावैं।
दृष्टि खोलिजे जगे प्रवीना, तिन आलस तजि उद्यम कीना॥

ज्ञानी और अज्ञानी की परणतिपर दृष्टान्त।

कांच बांधै सिरसों सुमनि बांधै पायनिसों, जानै न गंवार कैसी मनि कैसो कांच है। यों ही मूढ़ झूठमें मगन झूठ हीकों दौरै, झूठी बात मानै पै न जानै कहा सांच है॥ मनिको परखि जानै जौंहरी जगत् मांहि, सांचकी समुझि ज्ञान लोचनकी जांच है। जहांको जु वासी सो तो तहांको मरम जाने, जाको जैसो स्वांग ताको तैसे रूप नांच है॥१०॥

जैसी क्रिया तैसा फल। दोहा।

बंध बंधावे अंध व्है, ते आलसी अजान।
मुक्ति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान॥ ११॥

जब तक ज्ञान है तब तक वैराग्य है। सवैया इकतीसा।

जबलगु जीव शुद्ध वस्तुको विचारै ध्यावै, तबलगु भोगसों उदासी सरवंग है। भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नाहिं, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यात अंग है॥ तातैं विषै भोगमें मगन सो मिथ्याति जीव, भोग सों उदासि सो समकिती अभंग है। ऐसे जानि भोगसों उदासि व्है मुकति

साधै. यहै मन चंग तो कठोती मांहि गंग है ॥ १२ ॥

चार पुरुषार्थ । दोहा ।

धरम अरथ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग ।
कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरवंग ॥ १३ ॥

चार पुरुषार्थों पर ज्ञानी और अज्ञानी का विचार ।

कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंडित धरम कहै वस्तुके सुभावको । खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहै, ज्ञानी कहै अरथ दरब दरसाउको ॥ दंपति को भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाष चित चाउको, इन्द्रलोक थानको अजानलोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंधके अभाउको ॥ १४ ॥

आत्मा ही में चारों पुरुषार्थ हैं । सवैया इकतीसा ।

धरमको साधन जु वस्तुको सुभाउ साधै, अरथको साधन विलेछ दर्ब षटमें । यहै काम साधना जु संग्रहै निरास पद, सहज स्वरूप मोख सुद्धता प्रगटमें ॥ अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोकै बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निजघटमें । साधन आराधनकी सोंज रहै जाके संग, भूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ १५ ॥

वस्तु का सत्य स्वरूप और मूर्ख का विचार ।

तिहूं लोक मांही तिहूं काल सब जीवनि कों, पूरब

करम उदै आइ रस देतु है । कोउ दीर्घाउ धरै कोउ अलपाउ मरै, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेतु है ॥ याहि मैं जिवायो याहि मार्यो याहि सुखीकर्यो,दुखी कर्यो ऐसी मूढ आपु मानि लेतु है । यही अहंबुद्धि सों न विनसै भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम-बंध-हेतु है१६

सवैया इकतीसा ।

जहांलों जगत के निवासी जीव जगत में, सबै असहाय कोउ काहु कौ न धनी है । जैसी २ पूरब करम सत्ता बांधि जिन,तैसी तैसी उदै में अवस्था आइ बनी है ॥ एते परि जोकोउ कहै कि मैं जिवावों मारों,इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है । सो तो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहूं काल, डोले निज आतम सकति तिन हनी है ॥१७॥

उत्तम मध्यम अधम और अधमाधम जीवों का स्वभाव ।

उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस दाख, बाहिज अभितर विरागी मृदुअंग है । मध्यम पुरुष नारियर कैसी भांति लिये, बाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है ॥ अधम पुरुष बदरीफल समान जाके, बाहिरसों दिसै नरमाइ दिल संगहै । अधमसों अधम पुरुष पुंगीफल सम, अंतरङ्ग बाहिर कठोर सरवंग है ॥ १८ ॥

उत्तम पुरुष का स्वभाव सवैया इकतीसा ।

कीच सौ कनक जाके नीचसो नरेशपद, मीचसी मिताई गरवाई जाके गरसी । जहरसी जोग जाति कहरसी करामाति हहरसी हौस पुद्गल छबि छारसी ॥ जालसौ जगविलास भालसो भुवनवास, काल सो कुटम्ब काज लोक लाज लारसी । सीठ सो सुजस जानै बीठसो बखत मानै ऐसे जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी ॥ १६ ॥

मध्यम पुरुष का स्वभाव । सवैया इकतीसा ।

जैसे कोउ सुभट सुभाव ठग मूर खाय, चेरा भयो ठगनी के घेरा में रहतु है । ठगोरि उतरि गई तब ताहि सुधि भई, पर्यो परवस नाना संकट सहतु है ॥ तैसे ही अनादि को मिथ्याती जीव जगत में, डोलै आठौं जाम विसराम न गहतु है । ज्ञान-कला भासी भयो अन्तर उदासी पै तथापि उदै व्याधिसों समाधि न लहतु है ॥२०॥

अधम पुरुषका स्वभाव । सवैया इकतीसा ।

जैसें रंक पुरुषके भाये कानी कौड़ी धन, उलूवाके भाये जैसे संझाइ बिहान है । कूकरके भाये ज्यों पिडौर जिरवानी मठा, सूकरके भाये ज्यों पुरीष पकवान है ॥ वायसके भाये जैसे नींव की निबोरी दाख, बालक के भाये दंत कथा ज्यों पुरान है । हिंसक के भाये जैसे हिंसामें

धरम तैसे, मूरख के भाये सुभ बंध निरवान है ॥२१॥

अधमाधम पुरुष का स्वभाव। सवैया इकतीसा।

कुंजरकों देखि जैसे रोष करि भूंसे स्वान, रोष करै निर्धन विलोकि धनवंतकों। रैनके जगैया कों विलोकि चोर रोष करै, मिथ्यामति रोष करै सुनत सिद्धन्तको॥ हंसकों विलोकि जैसे काग मन रोष करे, अभिमानी रोष करै देखत महंतकों। सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करै, त्यों हि दुरजन रोष करै देखि संतकों ॥२२॥

सवैया इकतीसा।

सरल कों सठ कहै वकताकों धीठ कहै, विनै करै तासों कहै धनको अधीन है। छमीको निबल कहै दमीकों अदत्ती कहै, मधुर वचन बोलै तासो कहै दीन है॥ धरमी कों दंभी निसप्रेहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै भागहीन है। जहां साधु गुण देखै तिन्हकों लगावै दोष, ऐसो कछु दुर्जन को हिरदै मलीन है ॥२३॥

मिथ्यादृष्टि की अहंबुद्धि का वर्णन। चौपाई।

मैं करता मैं कीन्ही कैसी, अब यों करों कहो जो ऐसी
ए विपरीत भाव है जामें, सो बरतै मिथ्यात दशा में २४

दोहा।

अहंबुद्धि मिथ्यादशा, धरै सो मिथ्यावन्त।

विकल भयो संसार में, करै विलाप अनन्त ॥२५॥

मूढ़ मनुष्य विषयों से विरक्त नहीं होते।

रविके उदोत अस्त होत दिन २ प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटतु है। कालके ग्रसत छिन छिन होत छिन तन, आरेके चलत मानो काठसो कटतु है॥ एते परि मूरख न खोजै परमारथकों, स्वारथ के हेतु भ्रम भारत ठटतु है। लग्यो फिरै लोगनिसों पग्यो परे जोगनिसों, विषै रस भोगनिसों नेकु न हटतु है॥२६॥

अज्ञानी जीवकी मूढ़ता पर मृगजल और अन्धेका दृष्टान्त।

जैसें मृग मत्त विषादित्य की तपति माहि, तृषावन्त मृषा जल कारण अटतु है। तैसे भववासी मायाही सों हित मानि मानि, ठानि ठानि भ्रम श्रम नाटक नटतु है॥ आगे कों धुकत धाय पीछे बछरा चबाय, जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है। तैसे मूढ़ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हंसत फल खोवत खटतु है॥२७॥

अज्ञानी जीव बंधनसे न सुलझ सकने पर दृष्टान्त।

लिये दृढ़ पेच फिरै लोटन कबूतर सो, उलटा अनादिको न कहूं सुलटतु है। जाको फल दुःख ताही सातासो कहत सुख, सहित लपेटी असि-धारासी चटतु है॥ ऐसे मूढ़जन निज संपती न लखै क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशि

वासर रटतु है। याही ममता सों परमारथ विनसि जाइ, कांजी को परस पाइ दूध ज्यों फटतु है ॥२८॥

अज्ञानी जीव की अहं बुद्धि पर दृष्टान्त।

रूपकी न झांक हिये करम को डांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे घनमें। लोचन की ढांक सों न मानै सदगुरु हांक, डोलै पराधीन मूढ रांक तिहूं पन में॥ टांक इक मांस की डलीसी तामें तीन फांक, तीनि कौसो अंक लिखि राख्यौ काहु तन में। तासों कहै नाक ताके राखिबेको करे कांक, लांकसो खरग बांधि बांक धरै मनमें २९

अज्ञानी की विषयासक्तता पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

जैसे काउ कूकर क्षुधित सूके हाड़ चाबे, हाड़िनकी कोर चिहू ओर चुभे मुखमें। गाल तालू रसना मसूढ़नि को मांस फाटे, चाटै निज रुधिर मगन स्वाद-सुख में॥ तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाने, तामें चित साने हित माने खेद दुख में। देखै परतक्ष बलहानि मलमूतखानि, गहे न गिलानि पगि रहै राग-रुख में॥ ३०॥

जो निर्मोही है वह साधु है। अडिल छंद।

सदा करमसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो। मोह विकलता मानि मिथ्याती ह्वै रह्यो। करै विकल्प अनन्त, अहंमति धारिके। सो मुनि जो थिर होइ, ममत्त निवारिके।३१।

सवैया इकतीसा।

असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव, तेइ व्यवहार भाव केवली उकत है। जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन विवहार सों मुकत है॥ निरविकलप निरुपाधि आतमा समाधि, साधि जे सगुन मोक्ष पंथकों ढुकत है। तेई जीव परमदशामें थिररूप व्हैके, धरममें ढुके न करमसौं रुकत है॥ ३२॥

शिष्य का प्रश्न। कवित्त छंद।

जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सव्व। संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हि को मूल हेतु कहु अव्व॥ कै यह सहज जीव को कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल दव्व। सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व॥ ३३॥

शंका का समाधान। सवैया इकतीसा।

जैसे नानावरन पुरी बनाइ दीजै हेठि, उज्जल विमल मनु सूरज करांति है। उज्जलता भासै जब वस्तुको विचार कीजै, पुरीकी झलकसों वरन भांति भांति है॥ तैसे जीव दरबकों पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममतासों मोह मदिरा की माति है। भेद ज्ञान दृष्टिसों सुभाव साधि लीजे तहां, सांचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शांति है॥ ३४॥

सवैया इकतीसा ।

जैसे महिमंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है। पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होति, कांकरिकी खानि तहां झागकी झरनि है।। पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठे, भूमिकी निचानि तहां भौंरकी परनि है। तैसे एक आतमा अनंत रस पुद्गल, दुहूंकी संयोगमें विभावकी भरनि है ३५ ।।

जड़ चैतन्य की पृथकता । दोहा ।

चेतन लच्छन आतमा, जड़लच्छन तन जाल।
तनकी ममता त्यागिके, लीजै चेतन चाल ।। ३६ ।।

आत्मा की शुद्ध परिणति । सवैया तेईसा ।

जो जगकी करनी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई । देह प्रमान पै देहसौं दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई।। देह धरे प्रभु देहसौं भिन्न, रहे परछन्न लखै नहिं कोई। लच्छन वेदि विचच्छन बूझत, अच्छनसों परतच्छ न होई ।।३७।।

शरीर की अवस्था । सवैया तेईसा ।

देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेत की क्यारी। व्याधिकी पोट अराधिकी ओट उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी ।। रे जिय देह करै सुखहानि, इते पर तो ताहि लागत प्यारी। देह तौ ताहि तजेगि निदान पै, तूहि तजे

क्यू' न देह की यारी ॥३८॥

दोहा ।

सुनु प्रानी सद्गुरु कहैं, देह खेह की खानि ।
धरै सहज दुख दोष कों, करै मोक्ष की हानि ॥३९॥

सवैया तेईसा ।

रेत की सी गढ़ी किधों मढ़ी है मसान के सी, अन्दर अंधेरी जैसी कन्दरा है सैल की। ऊपर की चमक दमक पट भूषन की, धोखे लागे भली जैसी कली है कनैलकी॥ औगुन की ओंडी महा भोंडी मोह की कनौडी, माया की मसूरति है मूरति है मैल की। ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों, व्है रही हमारी मति कोल्हू के से बैल की ॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा ।

ठौर ठौर रकत के कुंड केसनि के झुंड, हाड़नि सों भरी जैसे थरी है चुरैल की । थारे से धकाके लगे ऐसे फट जाय मानो,कागद की पुरी किधौं चादर है चैलकी ॥ सूचे भ्रम वानि ठानि मूढ़नि सों पहिचानि, करै सुख हानि अरु खानि बदफैल की। ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों, व्है रही हमारी गति कोल्हूकेसे बैलकी ॥

संसारी जीवोंकी दशा कोल्हू के बैलके समान है ।

पाटी बंधे लोचन सों संकुचे दबोचनि सों, कोचनि को

सोच सो न वेदे खेद तन को। धाइबो ही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, वार वार आर सहै कायर है मनको ॥ भूख सहे प्यास सहे दुर्जन को त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहे छिन को। पराधीन घूमै जैसो कोल्हू को कमेरो बैल, तैसो ही स्वभाव भैया जगवासी जनका ॥४२॥

संसारी जीव को हालत ! सवैया इकतीसा ।

जगत में डोले जगवासी नर रूप धरें, प्रेत कैसे दीप किधों रेत के से थूहे हैं। दीसे पट भूषन आडंबरसों नीके फिरि, फीके छिनमांझि सांझ अम्बर ज्यों सूहे हैं ॥ मोह के अनल दगे माया की मनी सों पगे, डाभ की अनी सों लगे ओस कैसे फूहे हैं। धरम की बुझ नाहिं उरझे भरम माहिं, नाचि २ मर जाइ मरी के से चूहे हैं ॥४३॥

धन सम्पत्ति से मोह हटाने का उपदेश। सवैया इकतीसा ।

जासों तू कहत यह सम्पदा हमारी सो तो, साधनि अडारी ऐसे जैसे नाक सिनकी। जासों तू कहत हम पुन्य जोग पाई सो तो, नरक की साई है बड़ाई डेढ़ दिन की ॥ घेरा मांहि पर्यो तू विचारै सुख आंखिन्हि को, माखिन के चूंटत मिठाई जैसे भिनकी। एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिन की ॥ ४४ ॥

लौकिक जनों से मोह हटाने का उपदेश। दोहा।

यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज।
तेरे घट में जग वसे, तामें तेरो राज ॥ ४५ ॥

शरीर में त्रिलोक के विलास गर्भित हैं। सवैया इकतीसा।

याही नर पिंड में विराजै त्रिभुवन-थिति, याहि में त्रिविध परिणाम रूप सृष्टि है। याहि में करम की उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख वारिदकी वृष्टि है॥ यामें करतार करतूति याहि में विभूति, यामें भोग याहि में वियोग यामें घृष्टि है। याहि में विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहि कों प्रगट जाके अन्तर सुदृष्टि है ॥४६॥

आत्मविलास जानने का उपदेश। सवैया तेईसा।

रे रुचिवंत पचारि कहै गुरु, तू अपनो पद बूझत नांहीं। खोज हिये निज चेतन लच्छन, है निज में निज गूझत नांहीं॥ सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, मायाके फंद अरूझत नांहीं। तोर सरूप न दुंदकी दोहि में, ताहि में है ताहि सूझत नांहीं ॥४७॥

आतमस्वरूपकी पहिचान ज्ञानसे होती है। सवैया तेईसा।

केई उदास रहैं प्रभु कारन, केई कहैं उठि जांहि कहीं के। केई प्रनाम करैं गढ़ि मूरति, केई पहार चढे चढ़ छींके॥ केई कहें असमान के ऊपरि, केई कहें प्रभु हेठि जमींके।

मेरो धनी नहिं दूर दिशन्तर, मोहि में है मोहि सूझत नीके ॥

दोहा ।

कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, प्रभु पद परसै सोइ ।४९॥

मन की चंचलता । सवैया इकतीसा ।

छिन में प्रवीन छिन ही में मायासों मलीन, छिनक में दीन छिनमांहि जैसो शक्र है । लिये दौर धूप छिन छिन में अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥ नट कोसो थार किधौं हार है रहटकोसो, नदी कोसो भौंर कि कुंभार कोसो चक्र है । ऐसो मन भ्रामक सुथिर आजु कैसे होइ, औरहीको चंचल अनादि ही को बक्र है ॥५०॥

मन की चंचलता पर ज्ञान का प्रभाव ।

धायो सदा कालपै न पायो कहूं सांचो सुख, रूपसों विमुख दुख-कूपवास बसा है । धरमको घाती अधरमको सँघाती महा, कुराफाती जाको सन्निपाती कीसी दसा है ॥ माया कों झपटि गहै कायासों लपटि रहै, भूल्यो भ्रम भीर में बहीर कोसो ससा है । ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचलसु, ज्ञान के जगे सें निरवानपथ धसा है ॥ ५१ ॥

मन की स्थिरता का प्रयत्न । दोहा ।

जो मन विषय कषायमें, बरते चंचल सोइ ।

जो मन ध्यान विचारसों, रुके सुअविचल होइ ॥५२॥
ताते विषय कषायसों, फेरि सुमन की बानि ।
शुद्धातम अनुभो विषे, कीजे अविचल आनि ॥ ५३ ॥

आत्मानुभव करने का उपदेश । सवैया इकतीसा ।

अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है । नानारूप भेष धरे भेषको न लेसधरे, चेतन प्रदेसधरे चेतनाको खंध है ॥ मोह धरे मोही सो विराजै तामें तोहीसो, न मोहीसो न तोहीसो न रागी निरबंध है । ऐसो चिदानंद याही घटमें निकट तेरे, ताहि तू विचार मन और सब धंध है ॥ ५४ ॥

आत्मानुभव करने की विधि । सवैया इकतीसा ।

प्रथम सु दृष्टिसों सरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूछम शरीर भिन्न मानिये । अष्ट कर्मभावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न, ताहुमें सुबुद्धि को विलास भिन्न जानिये ॥ तामें प्रभु चेतन विराजित अखंडरूप, वहे श्रुत ज्ञान के प्रवान ठीक आनिये । वाहीको विचार करि वाहिमें गमन हुजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥५५॥

आत्मानुभव से कर्म बंध नहीं होता । चौपाई ।

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने, रागादिक निजरूप न माने । तातें ज्ञानवंत जगमांही, करम बंधको करता नाहीं ॥

भेद-ज्ञानी की क्रिया । सवैया इकतीसा ।

ज्ञानी-भेद ज्ञानसों विलेछि पुद्गल कर्म, आतमा के धर्मसों निरालो करि मानतो । ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो ॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपु मांहि अपनो सु-भाउगहि आनतो । साधि शिवचाल निरबंध होत तिहू काल केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतो ॥ ५७ ॥

भेद ज्ञानी का पराक्रम । सवैया इकतीसा ।

जैसे कोउ हिंसक अजान महाबलवान, खोदि मूल विरख उखारे गहिबाहुसों । तैसे मतिमान द्रर्व कर्म भावकर्म त्या-गि, व्है रहै अतीत मति ज्ञानकी दसाहुसों ॥ याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अन्धकार, जगे ज्योति केवल प्रधान सविताहु सों । चुके न सकति सों लुके न पुद्गल मांहि, ढुके मोख थलकों रुके न फिरि काहुसों ॥ ५८ ॥

इति नाटकसमयसारविषे बंधद्वार समाप्त ।

मोक्षद्वार ।

प्रतिज्ञा । दोहा ।

बंधद्वार पूरन भयो, जो दुख दोष निदान ।
अब वरनों संक्षेप सों मोक्षद्वार सुख खान ॥ १ ॥

मंगलाचरण । सवैया इकतीसा ।

भेद ज्ञान आरासों दुफारा करै ज्ञानी जीव, आतम करमधारा भिन्न २ चरचै । अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचै ॥ योंही मोख मुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि लहै पूरनकै परचै । भयो निरदौर याहि करनौ न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै ॥ २ ॥

सम्यग्ज्ञान से आत्मा की सिद्धि होती है । सवैया इकतीसा ।

काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनी, ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि डारि दीनी है । पैठी नोकरम भेदि दरब करम छेदि, सुभाउ विभाव ताकी संधि सोधि लीनी है ॥ तहां मध्य-पाती होइ लखी तिन्हि धारा दोइ, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है । मुधासों विरचि सुधासिन्धुमें मगन भई, एती सब क्रिया एकसमै बीच कीनी है ॥ ३ ॥

दोहा।

जैसी छैनी लोहकी, करै एकसों दोइ ।
जड़ चेतन की भिन्नता त्यों सुबुद्धिसों होइ ॥ ४ ॥

सुबुद्धि का विलास । सवैया इकतीसा ।

धरति धरम फल हरति करममल, मनवच तन बल करति समरपन । भखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन ॥ कहति मरम धुर दहति भरमपुर, गहति परमगुर उरउपसरपन। रहति जगति हित लहति भगतिरति, चहति अगतिगति यह मति परपन ॥

सम्यग्ज्ञानी का महत्व । सवैया इकतीसा ।

रानाकौसो बाना लीने आपा साधे थाना चीने, दाना अंगी नाना रंगी खाना जंगी जोधा है। माया बेली जेती तेती रेतमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेती कौसो लोधा है ॥ बाधासेती हांता लोरे राधासेती तांता जोरे, बादीसेती नाता तोरै चांदी कौसौ सोधा है। जानै जाही ताही नीके माने राही पाही पीके, ठानै बातैं डाही ऐसो धारावाही बोधा है ॥ ३ ॥

ज्ञानी जीव ही चक्रवर्ती है।

जिनके दरब मिति साधन छ खंड थिति, विनसै विभाव अरिपङ्कति पतन हैं। जिन्हके भगतिको विधान

एई नौ निधान, त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं ॥जिन्हि-के सुबुद्धि रानी चूरै महा मोह वज्र, पूरै मंगलीक जे जे मो-खके जतन हैं । जिन्हके प्रमान अंग सोहै चमू चतुरंग, तेई चक्रवर्ती तनु धरैं पै अतन हैं ॥ ७ ॥

नव भक्ति के नाम ।

श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन बंदन ध्यान ।
लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमान ॥ ८ ॥

ज्ञानी जीवोंका मन्तव्य

कोई अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमें, लच्छन विभेद भिन्न करमको जाल है । जानै आप आपुको जु आपु करि आपुविषै, उतपति नास ध्रुव धारा असराल है ॥ सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरो, निहचै सुभाउ यह विव-हार चाल है । मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्राधारी, प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल है ॥ ९ ॥

आत्मा के चेतन लच्छण का स्वरूप ।

निराकार चेतना कहावै दरसन गुन, साकार चेतना शुद्ध ज्ञान गुण सार है । चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरव मांहि, सामान विशेष सत्ताही को विसतार है ॥ कोऊ कहै चेतना चिहन नाहीं आतमा में, चेतना के नास होत त्रिविधि विकार है । लच्छन को नास सत्ता नास मूल वस्तु नास,

तातें जीव दरबको चेतना आधार है ।। १० ।।

चेतन लक्षन आतमा, आतम सत्ता मांहि ।
सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमें नांहि ।। ११ ।।

आत्मा नित्य है ।

ज्यों कलधात सुनारकि संगति, भूषन नांउ कहै सब कोई । कंचनता न मिटी तिहिं हेतु, वहै फिर औटि कै कंचन होइ ।। त्यों यह जीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप भयो नहिं दोई । चेतनता न गई कबहू तिहिं, कारन ब्रह्म कहावत सोई ।। १२ ।।

सुबुद्धि सखीको ब्रह्म का स्वरूप समझाते हैं ।

देखु सखी यह आपु विराजत, याकि दसा सब याहि-कू सोहै । एकमें एक अनेक अनेक में, द्वंद लिये दुविधा महि दो है ।। आपु सँभारि लखै अपनो पद, आपु विसारके आपुहि मोहै । व्यापक रूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कौन अज्ञान में कोहै ।। १३ ।।

आत्म अनुभवका दृष्टान्त ।

ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटै जग कौतुक देखै । आपु लखै अपनो करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखै ।। त्यों घटमें नट चेतन राउ, विभाउ दसा धरि रूप विसेखै । खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, दुन्द विचार दसा

नहिं लेखै ॥ १४ ॥

हेय उपदेय भावों पर उपदेश ।

जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है । और भाव जो धरे सु औरे कोइ है ॥ यों चिनमंडित भाव उपादे जानते । त्याग जोग परभाव पराये मानते ॥ १५ ॥

ज्ञानीजीव चाहे घरमें रहे चाहे वनमें, मोक्ष मार्ग में हैं ।

जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागी, परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमें । रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्है न रहै धाम धनमें ॥ जे सदीव आपको विचारै सरवंग सुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापै कहूं मनमें । तेई मोक्ष मारगके साधक कहावें जीव, भावे रहो मन्दिर में भावे रहो वनमें ॥ १६ ॥

मोक्षमार्गी जीवों की परिणति ।

चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो । राग विरोध विमोह दशा, समुझै भ्रम नाटक पुग्गल केरो ॥ भोग सँयोग वियोग व्यथा, अविलोकि कहै यह कर्मज घेरो । है जिन्हकों अनुभौ इहि भांति, सदा तिन्हिकों परमारथ नेरो ॥ १७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव साधु हैं और मिथ्यादृष्टि जीव चोर हैं ।

जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अज्ञ ।

जो अपनो धन विवहरै, सो धनपति धरमज्ञ ॥१८॥
पर की संगति जो रचै, बंध बढ़ावे सोइ।
जो निज सत्ता में मगन, सहज मुक्त सो होइ ॥१९॥

द्रव्य और सत्ता का स्वभाव।

उपजे विनसे थिर रहै, यह तो वस्तु बखान।
जो मरजादा वस्तु की, सो सत्ता परवान ॥२०॥

षट द्रव्य की सत्ता का स्वभाव।

लोकालोक मान एक सत्ता है अकाश दर्व, धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमित है। लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व: काल के अणु असंख्य सत्ता अगनित है॥ पुदगल शुद्ध परवानकी अनन्त सत्ता, जीव की अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है। कोऊ सत्ता काहु सों न मिले एकमेक होइ, सबै असहाय यों अनादि हीकी थिति है॥

छह द्रव्य से ही जगतकी उत्पत्ति है।

एई छहों द्रव्य इनही को है जगत-जाल, तामें पांच जड़ एक चेतन सुजान है। काहू की अनन्त सत्ता काहू सों न मिलै कोइ, एक एक सत्ता में अनन्त गुन गान है॥ एक एक सत्ता में अनन्त परजाय फिरे, एक में अनेक इहि भांति परवान है। यहै स्यादवाद यहै संतन की मरजाद, यहै सुख पोष यहै मोक्ष को निदान है ॥२२॥

साधि दधि मन्थमें अराधि रस पन्थनि में, जहां तहां ग्रन्थनि में सत्त कौ ही सोर है। ज्ञान भानु सत्ता में सुधा निधान सत्ता ही में, सत्ता की दुरनि सांझि सत्ता मुख भोर है ॥ सत्ता कौ सरूप मोख सत्ता भूले यही दोष, सत्ता के उलंघे धूम धाम चिहू ओर है। सत्ता की समाधि में विराजि रहे सोई साहु, सत्ता तें निकसि और गहे सोई चोर है ॥ २३ ॥

आत्मसत्ता का अनुभव निर्विकल्प है।

जामें लोक वेद नांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि, क्रिया नाहिं करनी। जामें राग दोष नांहिं जामें बंध मोख नांहि, जामें प्रभु दास न अकास नांहि धरनी ॥ जामें कुलरीत नांहि जामें हारजीत नांहि, जामें गुरु शिख नांहि वीष नांहि भरनी। आश्रम वरन नांहि काहूकी सरनि नांहि, ऐसी सुद्ध सत्ता की समाधि भूमि वरनी ॥२४॥

जो आत्मसत्ता को नहीं पहचानता वह अपराधी है!

जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
समता राम न जानई, सो अपराधी जीव ॥ २५ ॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध।
परकों माने आतमा, करे करम को बंध ॥ २६ ॥
झूठी करनी आचरे, झूठे सुखकी आस।

झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥ २७ ॥

मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति ।

माटीभूमी सैलकी सुसंपदा वखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है। अपनो न रूप गहै औरही सों आपु कहै, साता तो समाधि जाके असाता कहर है॥ कोपको कृपान लिये मान मदपान किये, मायाकी मरोर हिये लोभ की लहर है। याही भांति चेतन अचेतन की संगतिसों, सांचसों विमुख भयो झूठमें बहर है॥ २८ ॥

तीनकाल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है। तासों कहै यह मेरो दिन यह मेरी राति यह मेरी घरी यह मेरोई पहर है॥ खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरो गेह, जहां वसे तासों कहे मेरोही सहर है। याही भांति चेतन अचेतन की संगतिसों, सांचसों विमुख भयो झूठ में बहर है॥ २९ ॥

सम्यग्दृष्टि जीवोंका सद् विचार ।

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञानकला घटमांहि ।
परचे आतमरामसों, ते अपराधी नांहि ॥ ३० ॥

सवैया इकतीसा ।

जिन्हके धरमध्यान पावकप्रगटभयो, संसे मोह विभ्रम विरख तीन्यो उढ़े हैं। जिनकी चितौनि आगे उदै स्वान भूसि

भागे, लागै न करमरज ज्ञानगज चढ़े हैं ॥ जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग आगममें, आगममें निपुन अध्यातम में कढ़े हैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठों जाम, राम रस गाढ़ करे यहै पाढ़ पढ़े हैं ॥ ३१ ॥

सवैया इकतीसा।

जिन्हकी चिहुंटी चिमटासी गुन चूनबे कों, कुकथाके सुनवेकों दोउ कान मढे हैं। जिन्हको सरलचित कोमल वचन बोले,सोमदृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढ़े हैं ॥ जिन्हके सकति जगी अलख अराधिबेंकों, परम समाधि साधिबेकों मन बढे हैं। तेई परमारथी पुनीत नर आठों जाम,राम रस गाढ़ करे यहै पढ़े हैं ॥ ३२ ॥

समाधि वर्णन।

राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननकों दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहिं कोइ ॥ ३३ ॥

शुभ क्रियाओं का स्पष्टीकरण।

नंदन बंदन थुतिकरन, श्रवन चिन्तवन जाप।
पढ़न पढ़ावन उपदिसन,बहुविधक्रिया कलाप ॥३४ ॥

शुद्धोपयोग में शुभोपयोग का निषेध

शुद्धातम अनुभौ जहां, सुभाचार तहां नांहि।
करमकरममारगविषै, शिवमारग शिवमांहि ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

इहि विध वस्तुव्यवस्था जैसी, कही जिनिंद कहीमें तैसी ।
जे प्रमादसंयत मुनिराजा, तिन्हिकों शुभाचारसों काजा ३६
जहां प्रमाददशा नहिं व्यापे, तहां अवलंब आपनो आपे ॥
ता कारन प्रमाद उतपाती, प्रगट मोक्षमारगको घाती ३७
जे प्रमाद संयुक्त गुसांई, उठहि गिरहिं गिडुककी नांई ॥
जे प्रमाद तजि उद्धत होही, तिन्हिको मोखनिकटदृगसोही ३८
घट में है प्रमाद जब तांई, पराधीन प्रानी तब तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासै, तब प्रधान अनुभौ परगासै ३९

दोहा ।

ता कारन जगपन्थ इत, उत शिव मारग जोर ।
परमादी जग कों ढुके, अपरमाद शिवओर ॥ ४० ॥
जे परमादी आलसी, जिन के विकलपभूरि ।
होहि सिथिल अनुभौविषै, तिन्हिकों शिवपथदूरि॥४१॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतना युक्त ।
ते मुनिवर लघुकालमें, होंहि करम सों मुक्त ॥ ४२ ॥
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव ।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥४३ ॥

ज्ञान में सब जीव एकसे भासते हैं ।

जैसे पुरुष लखे पहार चढि, भूचर पुरुष तांहि लघु

लग्गै । भूधर पुरुष लखै ताकूं लघु, उतरि मिलें दुहुकौ भ्रम भग्गै ।। तैसें अभिमानी उन्नत लग, और जीवकों लघुपद दग्गै । अभिमानीकों कहैं तुच्छ सब, ज्ञान जगे समतारस जग्गै।

अभिमानी जीवों को दशा ।

करमके भारी समुझे न गुनको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे हैं । होहि न नरमचित गरम घरमहू ते, चरम की दृष्टिसों भरम भूली रहे हैं ।। आसन न खोलें मुख वचन न बोलें सिर, नाएहूं न डोलें मानो पाथरके चहे हैं । देखन के हाउ भाव पन्थके वढ़ाऊ ऐसें, मायाके खटाऊ अभिमानी जीव कहे हैं ।।४५ ।।

ज्ञानी जीवों की दशा ।

धीरके धरैया भवनीरके तरैया भय, भीरके हरैया वरवीर ज्यों उमहे है । मारके मरैया सुविचारके करैया सुख, ढारके ढरैया गुनलौसों लहलहे हैं।। रूपके रिझैया सब नैके समुझैया सब, हीके लघुभैया सबके कुबोल सहे हैं । बामके वमैया दुःखधामके दमैया ऐसे, रामके रमैया नर ज्ञानीजीव कहे हैं।।

सम्यक्त्वी जीवों की महिमा । चौपाई ।

जे समकिती जीव समचेती, तिन्हकी कथा कहों तुमसेती ।
जहां प्रमाद क्रिया नहिं कोई, निर्विकल्प अनुभौपद सोई ४७
परिग्रहत्याग जोगथिर तीनो, करम बंध नाहि होइ नवीनो ।
जहां न रागदोषरस मोहै, प्रगट मोखमारग मुख सोहै ४८

पूरब बंध उदै नहिं व्यापे, जहां न भेद पुन्न अरु पापे ।
दरबभाव गुन निर्मल धारा, बोधविधान विविध विस्तारा ४६
जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी, तिन्हिके हिरदे दुविधा कैसी ।
जे मुनि क्षपकश्रेणि चढ़ि धाये, ते केवलि भगवान कहाये ५०

सम्यग्दृष्टि जीवों की वन्दना ।

इहिविधि जे पूरन भये, अष्ट करमवन दाहि ॥
तिन्हिकी महिमा जो लखे, नमै बनारसि ताहि ॥५१॥

मोक्ष प्राप्ति का क्रम ।

भयो शुद्ध अंकूर, गयो मिथ्यात मूर नशि । क्रमक्रम होत उदोत सहजजिम शुकलपक्ष शशि ॥ केवल रूप प्रकासि भासि सुख रासि धरम ध्रुव । करि पूरन थित आउ, त्यागि गतभाव परम हुव ॥ इहविधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बूंद सागर भयो । अविचल अखंड अनभय अखय, जीव दरब जगमहिं जयो ॥ ५२ ॥

ज्ञानावरनीके गये जानिये जु है सु सब, दर्सनावरनके गयेतें सब देखिये । वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित विसेखिये ॥ आउ कर्म गये अवगाहना अटल होइ, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये । अगुरुअलघुरूप होत गोत कर्मगये, अंतराय गयेतें अनंत बल लेखिये ॥ ५३ ॥

इति नाटक समयसार विषै मोक्षद्वार समाप्त ।

सर्वविशुद्धि द्वार

प्रतिज्ञा

इति श्री नाटक ग्रंथमें, कह्यो मोक्षअधिकार।
अब बरनों संक्षेपसों, सरव विशुद्धी द्वार ॥ १ ॥

सर्व उपाधिरहित शुभ आत्माका स्वरूप।

करमको करता है भोगनिको भोगता है, जाकी प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है। जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥ ज्ञानको समूह ज्ञानगम्य है सुभाउ जाको, लोकव्यापी लोकातीत लोकमें महित है। शुद्ध हंस शुद्ध चेतना के रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥ २ ॥

जो निहचै निरमल सदा, आदि मध्य अरु अन्त।
सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवन्त ॥ ३ ॥

वास्तवमें जीव कर्मकर्त्ता भोक्ता नहीं है।

जीव करम करता नहिं ऐसो, रस भोगता सुभाउ न जैसो।
मिथ्यामतिसों करता होई, गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ४ ॥

अज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता है।

निहचे निहारत सुभाउ याहि आतमाको, आतमीक धरम परम परकासना। अतीत अनागत वरतमान काल

जाको, केवल सरूप गुन लोकालोक भासना ॥ सोई जीव संसार अवस्थामांहि करमको, करतासौ दीसे लिए भरम उपासना। यहे महा मोह के पसार यहे मिथ्याचार, यहे भौ विकार यहे व्यवहार वासना ॥ ५ ॥

जीव कर्म का अकर्त्ता है वैसे अभोक्ता भी हैं।

जथा जीव करता न कहावै, तथा भोगता नाम न पावै ॥ है भोगी मिथ्यामतिमांही,गए मिथ्यात भोगता नांही ॥६॥

अज्ञानी जीव विषयों का भोक्ता है, ज्ञानी नहीं है।

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजायबुद्धी, सोतो विषै-भोगनि को भोगता कह्यो है। समकिती जीव जोग भोग सों उदासी तातें, सहज अभोगता गरंथनि में गायो है ॥ याही भांति वस्तु की व्यवस्था अवधारे बुध, परभाउ त्यागि अपनो सुभाउ आयो है। निरविकलप निरुपाधि आतम अराधि, साधि जोग जुगति समाधि में समायो है ॥ ७ ॥

चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्मअधिकारी गुन, रतनभंडारी अपहारी कर्म राग को। प्यारो पंडितनिको हुस्यारो मोष मारग में, न्यारो पुद्गलसों उजियारो उपयोग को ॥ जाने निज पर तत्त रहे जग में विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोग को। ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करम को, करता न होइ भोगता न होइ भोग को ॥ ८ ॥

निरभिलाष करनी करे, भोग अरुचि घटमांहि ।
तातें साधक सिद्ध सम, करता भुगता नांहि ॥ ६ ॥

अज्ञानीजीव कर्मका कर्त्ता भोक्ता है—इसका कारण ।

ज्यों हिय अन्ध विकल मिथ्या धर, मृषा सकल विकलप उपजावत । गहि एकन्त पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥ त्यों जिनमती दरब चारित्री कर, करनी करि करतार कहावत । वंछित मुक्ति तथापि मूढ़मति, बिनु समकित भवपार न पावत ॥ १० ॥

वास्तव में जीव कर्मका अकर्त्ता है इसका कारण ।

चेतनअङ्क जीव लखिलीन्हा, पुद्गलकरमअचेतन चीन्हा ।
वासी एक खेतके दोऊ, यदपितथापि मिले नहिं कोऊ॥११॥
निजनिज भाउक्रिया सहित, व्यापकव्यापि न कोइ ।
करता पुद्गल करमको, जीव कहांसों होइ ॥ १२ ॥

अज्ञान में जीव कर्म का कर्त्ता और ज्ञान में अकर्त्ता है ।

जीव अरु पुद्गल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है । लच्छन सरूप गुन परजे प्रकृति भेद, दुहू में अनादिही की दुविधा व्है रही है ॥ एते परिभिन्नता न भासे जीव करम की, जौलों मिथ्या भाउ तौलों ओंधी वाउ बही है । ज्ञान के उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई, जीव कर्मपिण्ड को अकरतार सही है ॥ १३ ॥

एक वस्तु जैसी जु है, तासों मिले न आन।
जीव अकर्ता करमको, यह अनुभौ परवान ॥ १४ ॥

अज्ञानी जीव अशुभ भावों का कर्त्ता होने से भाव कर्म का कर्त्ता है।

जे दुरमती विकल अज्ञानी, जिन्हि सुरीति परिरीति न जानी।
मायामगन भरम के भरता, तेजिय भावकरमके करता १५

जे मिथ्यातम तिमिरसों, लखे न जीव अजीव।
तेई भावित करम के, करता होंइ सदीव ॥ १६ ॥
जे अशुद्ध परिनति धरें, करें अहं परवान।
ते अशुद्ध परिनाम के, करता होंइ अजान ॥ १७ ॥

इसके विषय में शिष्य का प्रश्न।

शिष्य कहे प्रभु तुम्हकह्या, दुविध करमको रूप।
दर्व कर्म पुद्गलमई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ १८ ॥
करता दरवित करमको, जीव न होइ त्रिकाल।
अब इह भावितकरम तुम, कहो कौनकी चाल ॥१९॥
करता याको कौनहै, कौन करै फल-भोग।
कै पुद्गल कै आतमा, कै दुहुको संयोग ॥ २० ॥

इस पर श्री गुरु समाधान करते हैं।

क्रिया एक करता युगल, यों न जिनागममांहि।
अथवा करनी और की, और करै यों नांहि ॥ २१ ॥
करे और फल भोगवे, और बने नहिं एम।

जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥ २२ ॥
भावकर्म कर्तव्यता, स्वयंसिद्ध नहिं होइ।
जो जगकी करनी करे,जगवासी जिय सोइ ॥ २३ ॥
जिय करता जिय भोगता, भावकर्म जियचाल।
पुद्‌गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्या जाल ॥२४॥
तातें भावित करमकों, करे मिथ्याती जीव।
सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥२५॥

कर्म के कर्ता भोक्ता बाबत एकांत पक्ष पर विचार।

केई मूढ विकल एकंत पक्ष गहैं कहैं, आतमा अकरतार पूरन परम है। तिन्हसों जु कोऊ कहै जीव करता है तासों फेरिकहैं करमको करता करम है॥ ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोह को भरम है। तिन्हको मिथ्यात दूरि करिवे कों कहै गुरु, स्याद्‌वाद परवान आतम धरम है॥ २६ ॥

स्याद्वाद में आत्मा का स्वरूप।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान।
नहिं करता नहिं भोगता, निहचै सम्यकवान ॥ २७ ॥

एकांत पक्ष खंडन करने वाले स्याद्वाद का उपदेश।

जैसे सांख्यमति कहै अलख अकरता है,सर्वथा प्रकार करता न होइ कबही। तैसें जिनमति गुरुमुख एकपक्ष सुनि

याहि भाँति मानै सो एकंत तजो अबही ॥ जोलों दुरमति तौलों करमको करता है, सुमति सदा अकरतार कह्यौ सबही। जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जब ही सों सोतो जगजालसों निरालो भयो तबही ॥ २८ ॥

इस विषय में बौद्धमतवालों का विचार। दोहा।

बौध छिनकवादी कहै, छिनभंगुर तनुमांहि।
प्रथम समै जो जीव है, दुतिय समै सो नांहि ॥२९॥
ताते मेरे मतविषे, करे करम जो कोइ।
सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ ॥ ३० ॥

बौद्धमतवालों का एकान्त दूर करने का दृष्टान्त।

यह एकंत मिथ्यात पख, दूरि करनके काज।
चिदविलास अविचलकथा, भाषै श्रीजिनराज ॥३१॥
बालापन काहू पुरुष, देख्यो पुर इक कोइ।
तरुन भये फिरिके लख्यो, कहे नगर यह सोइ ॥३२॥
जो दुहुपनमें एक थो, तो तिन्हि सुमिरन कीय।
और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥३३॥
जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध।
तब इकांतवादी पुरुष, जैन भयो प्रतिबुद्ध ॥३४॥

बौद्ध भी जीव द्रव्य को क्षणभंगुर कैसे मान बैठा इसका कारण। सवैया इकतीसा।

एक परजाय एक समैमें विनसि जाइ, दूजी परजाय

दूजे समै उपजति है। ताको छलपकरिके बोधकहै सगैसमै नवो जीव उपजे पुरातन की छति है॥ ताते मानै करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिए ऐसी मति है। परजै प्रवानको सरवथा दरब जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है॥३५॥

दुर्बुद्धि की दुर्गति ही होती है। दोहा।

दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल।
गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुकति न होइ त्रिकाल॥३६॥
कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम शुद्धि।
रहै अध्यातमसों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि॥ ३७॥

दुर्बुद्धि की भूल पर दृष्टान्त। सवैया इकतीसा।

कायासे विचारि प्रीति मायाहि सों हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी। चूंगल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंही पाई गाडे पै न छांडे टेक पकरी॥ मोहकी मरोरसों भरमको न छोरपावे, धावै चिहुँ ओर ज्यों बढावै जाल मकरी। ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनि सों जकरी॥ ३८॥

दुर्बुद्धि की परणति। सवैया इकतीसा।

बात सुनि चोंकउठे बातहिसों भोंकि उठे, बातसों नरम होइ बातहीसों अकरी। निन्दा करे साधुकी प्रशंसा करे

हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी ॥ मोख न सुहाइ दोख देखैं तहां पैठि जाइ, कालसों डराय जैसे नाहरसों बकरी। ऐसी दुबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरे ममताजंजीरनिसों जकरी ॥ ३६ ॥

अनेकान्त की महिमा। कवित्त छन्द।

केई कहै जीव छिनभंगुर, केई कहै करम करतार। केई करम रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार ॥ जे एकंत गहै ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार। जैसे भिन्न भिन्न मुक्तागन, गुनसों गहत कहावे हार ॥ ४० ॥

दोहा।

जथा सूतसंग्रहबिना, मुक्तमाल नहि होइ।
तथा स्याद्वादी विना, मोख न साधे कोइ ॥ ४१ ॥
पद सुभाउ पूरबउदे, निहचे उद्यम काल।
पक्षपात मिथ्यातपथ, सरवंगी शिव चाल ॥ ४२ ॥

छहों मतवालोंका जीव पदार्थपर विचार।

एक जीव वस्तु के अनेक रूप गुन नाम, निरजोग शुद्ध परजोग सों अशुद्ध है। वेद पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहै, शिवमति शिव कहै बौध कहे बुद्ध है ॥ जैनी कहे जिन न्यायवादी करतार कहै, छहों दरसनमें वचनको विरुद्ध है। वस्तुको सरूप पहिचाने सोइ परवीन, वचन के भेद भेद माने सोइ शुद्ध है ॥ ४३ ॥

पांचों मतवाले एकान्ती और जैनी स्याद्वादी हैं।

वेदपाठी ब्रह्म मानैं निहचै स्वरूप गहै, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहतु है। बौद्धमति बुद्धमाने सूक्षम सुभाउ साधैं, शिवमती शिवरूप कालको कहतु है॥ न्याय ग्रंथके पढैया थापे करतार रूप, उद्दिम उदीरि उर आनंद लहतु है। पांचों दरसनी तेतो पोषे एक २ अंग, जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतु है॥ ४४ ॥

पांचों मतों के एक एक अंगका जैनमत समर्थक है।

निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग, उद्यम की रीति लिये उद्धता सकति है। परजाय रूपको प्रवान सूक्षम सुभाउ, काल कीसी ढाल परिनाम चक्रगति है॥ याही भांति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एक कों न माने सो कुमति है। टेक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि,खोजी जीवे वादी मरे साची कहवति है॥ ४५ ॥

स्याद्वाद का व्याख्यान।

एक में अनेक हैं अनेक ही में एक है सु, एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है। करता अकरता है भोगता अभोगता हैं, उपजे न उपजत मूए न मरतु है॥ बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु, भेष को न भाजन पै भेष को धरतु है। ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगती सों,

उलट पलट नटबाजी सी करतु है ॥४६॥

निर्विकल्प उपयोग ही अनुभव के योग्य है।

नटबाजी विकलप दसा, नाहीं अनुभौ जाग।
केवल अनुभौ करनको, निरविकल्प उपयोग ॥ ४७ ॥

अनुभौ में विकल्प त्यागने का दृष्टान्त।

जैसे काहु चतुर संवारी है मुकतमाल, मालाकी क्रिया में नाना भांति को विज्ञान है। क्रिया को विकलप न देखे पहिरन वालो, मोतिन की शोभा में मगन सुखवान है॥ तैसें न करे न भुंजे अथवा करे सु भुंजे, और करे और भुंजे सब नय प्रवान है। यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग, निरविकलप अनुभौ अमृत पान है ॥४८॥

किस नयसे आत्मा कर्मों का कर्त्ता है और किस नयसे नहीं है।

दरव करम करता अलख, यहु व्यवहार कहाउ।
निहचे जा जैसो दरव, तैसो ताको भाउ ॥४९॥

ज्ञानका ज्ञेयाकाररूप परिणमन होता है पर वह ज्ञेयरूप नहीं होजाता।

ज्ञान को सहज ज्ञेयाकाररूप परिनमे, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है। ज्ञेय ज्ञेयरूप यों अनादिही की मरजाद, काहु वस्तु काहु को सुभाउ ना गह्यो है॥ एते पर कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभासनि सों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है। याहि दुरबुद्धिसों विकल भया

डोलत है, समुझै न धरम यों भर्म मांहि वह्यो है ॥५॥

जगत के पदार्थ परस्पर अव्यापक हैं।

सकल वस्तु जगमें असुहाई, वस्तु वस्तु सों मिले न काई।
जीव वस्तु जाने जग जेती, सोऊ भिन्न रहे सब सेती ॥५१॥

कर्म करना और फल भोगना यह जीवका निज स्वरूप नहीं है।

करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोइ।
यह कथनी व्यवहार की, वस्तु स्वरूप न होइ ॥५२॥

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता।

ज्ञेयाकार ज्ञान की परिनति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहिं होइ। ज्ञेय रूप षट दरव भिन्न पद, ज्ञान रूप आतम पद सोइ॥ जाने भेद भाउ सु विचच्छन गुन लच्छन सम्यक दृग जोइ। मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखै नहिं कोइ ॥५३॥

ज्ञेय और ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञानियों का हेतु।

निराकार जो ब्रह्म कहावे, सो साकार नाम क्यों पावे।
ज्ञेयाकार ज्ञान जब तांई, पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई ॥५४॥

इस विषय में अज्ञानियों का संशोधन।

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने, नाम करन का उद्दिम ठाने।
वस्तु स्वभाव मिटे नहिं क्योंही, ताते खेद करे सठ योंही ५५

मूढ़ मरम जाने नहीं, गहे इकांत कुपच्छ।

स्याद्वाद सरबंग नै, माने दक्ष प्रतक्ष ॥५६॥

स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा।

शुद्ध दरब अनुभौ करै, शुद्ध दृष्टि घट मांहि।
ताते समकितवन्त नर, सहज उछेदक नांहि ॥५७॥

ज्ञान ज्ञेय से अव्यापक है इस पर दृष्टान्त।

जैसे चन्दकिरन प्रकटि भूमि सेत करे, भूमिसी न होति सदा जोति सी रहति है। तैसे ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयकों गहति है॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनमै, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहति है,। सोतो और रूप कबहो न होइ सरबथा, निहचे अनादि जिनवानी यों कहति है॥ ५८॥

आत्म पदार्थ का यथार्थ स्वरूप।

राग विरोध उदे तबलों जबलों, यह जीव मृषामग धावे। ज्ञान जग्यो जब चेतन को तब कर्म दशा पररूप कहावे। कर्म विलेछि करे अनुभौ तब मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे। मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध भयो जगमाहिं न आवे॥ ५९॥

परमात्मपद की प्राप्ति का मार्ग।

जीव करम संयोग, सहज मिथ्यात रूप धर। राग दोष

परिनति प्रभाव, जाने न आप पर ॥ तम मिथ्यात मिटिगयो भयो समकित उदोत शशि । राग दोष कछु वस्तु नहिं, छिनु मांहि गये नसि ॥ अनुभौ अभ्यासि सुख राशि रमि, भयो निपुन तारन तरन । पूरन प्रकाश निहचलि निरखि, बनारसी बंदत चरन ॥ ६० ॥

अज्ञानियों के बिचार में राग द्वेष का कारण ।

कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम ।
पुग्गल की जोरावरी, वरते आतमराम ॥ ६१ ॥
ज्योंज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्मज भेष ।
राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ॥ ६२ ॥

अज्ञानियों को सत्य मार्ग का उपदेश ।

इहविधि जो विपरीति पख, गहै सद्दहे कोइ ।
सो नर राग विरोध सों, कबहूं भिन्न न होइ । ६३॥
सुगुरु कहै जगमें रहे, पुग्गल संग सदीव
सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहे न जीव ॥६४॥
ताते चितभावन विषै, समरथ चेतन राउ ।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यकमें सिवभाउ ॥ ६५ ॥

ज्ञान का माहात्म्य ।

ज्यों दीपक रजनीसमैं, चिहुदिसि करे उदोत ।
प्रगटे घट पट रूपमें, घट पट रूप न होत ॥ ६६ ॥

ज्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तु को मर्म।
ज्ञेयाकृति परिनमनपै, तजे न आतम धर्म॥ ६७॥
ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ।
राग विरोध विमोहमय, कबहूं भूलि न होइ॥ ६८॥
ऐसी महिमा ज्ञान की, निहचै है घट मांहि।
मूरख मिथ्यादृष्टिसों, सहज विलोकै मांहि॥ ७९॥

अज्ञानी जीव परद्रव्य में ही लीन रहता है।

परसुभाव में मगन रहै, ठाने राग विरोध।
धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध॥ ७०॥

अज्ञानी को कुमति और ज्ञानी को सुमति उपजती है।

मूरख के घट दुरमति भासी, पंडित हिये सुमति परगासी।
दुरमति कुबजा करमकमावे,सुमतिराधिका राम रमावे॥७१॥
कुबजा कारी कूबरी, करे जगत में खेद।
अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद॥ ७२

दुर्मति और कुबजा की समानता।

कुटिल कुरूप अङ्ग लगी है पराये संग, अपनो प्रवान करि आपुहि विकाई है। गहे गांत अन्ध कीसी सकति कमंधकीसी, बंधको बढ़ाउ करे धंधही में धाई है॥ रांड कीसी रीति लिए मांडकीसी मतवारी, सांड ज्यों सुछंद डोले भांडकीसी जाई है। घरको न जाने भेद करे पराधीन

खेद, याते दुर्बुद्धि दासी कुबजा कहाई है ॥ ७३ ॥

सुबुद्धि से राधिका की तुलना।

रूपकी रसीली भ्रम कुलफ की कीली सील, सुधा के समुद्र झीली सीली सुखदाई है। प्राची ज्ञान भान की अजाची है निदानकी, सुराची नरवाची ठौर साची ठकुराई है॥ धामकी खबरदार रामकी रमनहार, राधारस पंथनि के ग्रंथनि में गाई है। संतनि की मानी निरवानी नूरकी निसानी, याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥७४॥

कुमति सुमति का कृत्य।

वह कुबजा वह राधिका, दोऊ गति मति मान।
वह अधिकारिनि करमकी, यह विवेककी खान ॥७५॥

द्रव्यकर्म भावकर्म और विवेक का निर्णय।

दरव करम पुद्गल दसा, भाव कर्म मति वक्र।
जो सुज्ञान को परिनमन, सो विवेक गुरुचक्र ॥७६॥

कर्म के उदय पर चौपर का दृष्टान्त।

जैसे नर खिलार चोपरको, लाभ विचार करे चितचाउ
धरै सवारि सारि बुध बलसों, पासा जो कछु परे सुदाउ॥
तसैं जगत जीव स्वारथ को, करि उद्यम चिंतवे उपाउ।
लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्मचक्रको यही सुभाउ॥

विवेक चक्र के स्वभाव पर दृष्टान्त।

जैसे नर खिलार सतरंज को, समुझै सब सतरंज की

घात । चले चाल निरखै दोऊ दल, मोहरागिनै विचारे मात । तैसे साधु निपुन शिव पथ में, लच्छन लखे तजे उत पात । साधे गुन चिंतवै अभै पद, यह सुविवेक चक्र की बात ॥ ७८ ॥

कुमति कुबजा और सुमति राधिका के कृत्य ।

सतरँज खेले राधिका, कुबजा खेले सारि ।
याकेनिसिदिन जीतवो,वाके निसिदिन हारि ॥ ७६॥
जाके उर कुबजा बसे, सोई अलख अजान ।
जाकै हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥ ८० ॥

जहां शुद्ध ज्ञान वहां चारित्र है ।

जहांशुद्ध ज्ञानकी कलाउद्योत दीसे तहां, शुद्ध परवान शुद्ध चारित्र को अंस है । ता कारन ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग विलास धर्म वाको सरबंस है ॥ राग दोष मोह की दसासो भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालको विध्वंस है । निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरन परम हंस है ॥ ८१ ॥

ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरनकी चाल ।
ताते ज्ञान विराग मल, सिवसाधे समकाल ॥ ८२ ॥

ज्ञान चारित्र पर पंगु अंग का दृष्टान्त ।

यथा अन्धके कंध परि,चढ़ै पंगु नर कोइ ।

वाके दृग वाके चरण, होंहि पथिककमिलिदोइ ॥८३॥
जहां ज्ञान क्रिरिया मिले, तहां मोक्षमग सोइ।
वह जाने पद को मरम, वह पदमें थिर होइ ॥८४॥

ज्ञान और क्रिया की परिणति।

ज्ञान जीवकी सजगता, करम जीव की भूल।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगत को मूल ॥ ८५ ॥
ज्ञान चेतना के जगे, प्रगटे केवलराम।
कर्म चेतनामें वसै, कर्म बंध परिनाम ॥ ८६ ॥

कर्म और ज्ञान का भिन्न २ प्रभाव।

जबलग ज्ञान चेतना भारी, तबलगु जीव विकल संसारी।
जब घट ज्ञानचेतना जागी, तब समकिती सहज वैरागी ८७
सिद्ध समान रूप निज जानै, परसंजोग भाव पर मानै।
शुद्धातम अनुभौ अभ्यासे, त्रिविधकरम की ममता नासे ८८

ज्ञानी की आलोचना। दोहा।

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहै आपसों आप।
मैं मिथ्यात दशाविषे, कीने बहुविधि पाप ॥ ८९ ॥

हिरदे हमारे महामोहकी विकलताही, ताते हम करुना न कीनी जीव घात की। आप पाप कीने औरनकों उपदेश दीने, हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी॥ मन वच कायमें मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमें कहाए हम

पातकी। ज्ञानके उदे भए हमारी दशा ऐसी भई, जैसी भान भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ६० ॥

ज्ञान का उदय होने पर अज्ञान दशा हट जाती है।

ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहे, करुनानिधान अमलान मेरौ रूप है। कालसों अतीत कर्म जालसों अजीत जोग, जालसों अभीत जाकी महिमा अनूप है ॥ मोहकौ विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतसों शुन्य पाप पुन्य अंधकूप है। पाप किन कियो कौन करे करि है सु कौन, क्रिया को विचार सुपनेकी धौरधूप है ॥ ६१ ॥

कर्म प्रपंच मिथ्या है। दोहा।

मैं यों कीनो यों करौं, अब यह मेरो काम।
मन वच कायामें बसे, ए मिथ्या परिनाम ॥ ६२ ॥
मनवच काया करमफल, करम दशा जड़अङ्ग।
दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित भरम तरंग ॥ ६३ ॥
तातैं आतम धरमसों, करम सुभाव अपूठ।
कौन करावे को करे, कोसल है सब झूठ ॥ ६४ ॥

मोक्षमार्ग में क्रिया का निषेध।

करनी हितहरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि।
गनी बंधपद्धति विषे, सनी महादुखमांहि ॥ ६५ ॥

क्रिया की निन्दा ।

करनी की धरनीमें महामोह राजा बसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरी है । करनी करम काया पुग्गल की प्रति छाया, करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है ।। करनी के जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करनी की ओट ज्ञान भान दुति दुरीहै । आचारज कहै करनीसों विवहारी जीव, करनी सदीव निहचै सरूप बुरी है । ९६ ।।

ज्ञानियों का विचार । चौपाई ।

मृषा मोहकी परिनति फैली, तातें करम चेतना मैली ।
ज्ञान होत हम समुझी एती, जीव सदीव भिन्न परसेती ९७

दोहा ।

जीव अनादिसरूप मम, करमरहित निरुपाधि ।
अविनाशीअशरन सदा, सुखमय सिद्धसमाधि ।।९८।।

चौपाई ।

मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिदबिलास पद जग उज्यारा
रागविरोधमोह मम नांही, मेरो अवलंबन मुझमांही ।।९९।।

सम्यकवन्त कहे अपने गुन में नित राग विरोध सों रीतो । मै करतूति करों निरवंछक, मोहविषे रस लागत तीतो ।। सुद्ध सुचेतनको अनुभौ करि में जग मोह महाभट जीतो । मोख समीप भयो अब मोको काल अनंत इही

विधि बीतो ॥ १०० ॥

दोहा।

कहै विचच्छनमैंसदा, रह्यो ज्ञानरस राचि।
सुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होहुं कदाचि ॥१०१
पूर्व करम विषतरु भये, उदै भोग फल फूल।
मैं इन्हको नहिं भोगता, सहजहोहु निरमूल ॥ १०२

बैराग्य की महिमा।

जो पूरब कृत कर्मफल, रुचिसों भुंजे नांहि।
मगन रहै आठो पहुर, शुद्धातम पदमांहि ॥ १०३ ॥
सो बुध कर्मदसा रहित, पावै मोख तुरंत।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥१०४

ज्ञानी की उन्नति का क्रम।

जो पूरवकृतकर्म, विरष विषफल नहि भुंजे। जोग जुगति कारज करत ममता न प्रयुंजे ॥ राग विरोध निरोध संग, विकलप सब छंडे। शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि, शिव नाटक मंडे ॥ जो ज्ञानवन्त इहमग चलत, पूरन व्है केवल लहे। सो परम अतींद्रिय सुख विषै, मगनरूप संतत रहे ॥ १०५ ॥

शुद्ध आत्मद्रव्य को नमस्कार।

निरभै निराकुल निगमवेद निरभेद, जाके परगासमें

जगत माइयतु है। रूप रस गन्ध फास पुद्गलको विलास तासों उदवास जाको यश गाइयतु है॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसें न्यारो सदा, जामें जोग निग्रह को चिन्ह पाइयतु है। सो ज्ञान है परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश जानि सीस नाइयतु है॥ १०७॥

शुद्ध आत्म द्रव्य।

जैसो नर भेदरूप निहचों अतीत हुतो, तैसो निरभेद अब भेद कौन कहैगो। दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निजथान फिर बाहिर न बहैगो॥ कबहु कदाचि अपनो सुभाउ त्यागिकर, राग रस राचिके न पर वस्तु गहैगो। अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगम अनन्त काल रहैगो॥१०८॥

जब हितें चेतन विभाउसों उलटि आपु, समौ पाइ अपनो सुभाउ गहि लीनो है। तबहीते जो जो लेन जोग सो सो सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांड़ि दीनो है॥ लेबेको न रही ठौर त्यागिबेकों नांहि और, बाकी कहा उबर्यो जु कारज नवीनो है। संग त्यागि अंग त्यागि वचनतरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है॥ १०९॥

मुक्ति का मूल कारण द्रव्य लिंग नहीं है।

शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ।

तातै कारण मोख को दरबलिंग नहिं होइ ॥११०॥
दरब लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान।
अष्टमहारिधि अष्टसिधि, एऊ होहि न ज्ञान ॥१११॥

आत्मा के सिवाय अन्यत्र ज्ञान नहीं है।

भेष में न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु वर्त्तन में,मंत्र जंत्र तंत्र में न ज्ञान की कहानी है। ग्रंथ में न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरी में, बातनिमें ज्ञान नहिं ज्ञान कहा बानी है॥ तातें भेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र बात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निशानी है। ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान और ठौर कहुं, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञान को निदानी है ॥११२॥

ज्ञान के बिना वेषधारी विषयके भिखारी हैं।

भेष धरि लोगनि कों बंचे सो धरम ठग, गुरु सो कहावे गुरुवाई जाहि चाहिये। मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पण्डित कहावे पण्डिताई जामें लहिये॥ कवित्त की कला में प्रवीन सो कहावे कवि, बात कही जाने सो पवारगीर कहिये। ए तो सब विषै के भिखारी मायाधारी जीव, इन्ह कों विलोकि के दयाल रूप रहिये ॥११३॥

अनुभव की योग्यता।

जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञान को अंग।
पै तथापि अनुभौ दशा, वरतै विगत तरंग ॥११४॥

दरशन ज्ञान चरण दशा, करै एक जो कोइ।
थिर व्है साधे मोख मग, सुधी अनुभवी सोइ ॥११५॥

आत्मअनुभव का परिणाम। सवैया इकतीसा।

जोइ दृग ज्ञान चरणातम में बैठि ठौर, भयौ निरदौर परवस्तुकों न परसे। शुद्धता विचारै ध्यावे शुद्धतामें केलि करे, शुद्धतामें थिर व्है अमृतधारा वरसे॥ त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमकौ, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे। सोतौ विकलपविजई अलप कालमांहि, त्यागि भौ विधान निरवान पद परसे ॥११६॥

आत्म अनुभव करनेका उपदेश। चौपाई।

गुन परजै में दृष्टि न दीजे, निरविकलप अनुभौरस पीजे॥
आपसमाइ आपमें लीजे, तनपौ मेटि अपनपौ कीजे॥११७॥

दोहा।

तजि विभाव हूजे मगन, सुद्धातम पदमांहि।
एक मोखमारग यहै, और दूसरो नांहि ॥११८॥

आत्मअनुभवके विना बाह्यचारित्र होनेपर भी जीव अव्रती है।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव धरे जिन-मुद्रा भेष, क्रिया में मगन रहे कहे हम जती हैं। अतुल अखंड मलरहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भाव सों विमुख मूढ़-मती हैं॥ आगम संभाले दोष टाले विवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि

अविरती हैं। आपुकों कहावे मोख-मारग के अधिकारी,
मोख सों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरगती हैं ॥११६॥

दोहा।

जे विवहारी मूढ नर, परजैबुद्धी जीव।
तिनके बाहिज क्रियाविषै, है अवलम्ब सदीव ॥१२०॥

चौपाई।

जैसे मुगध धान पहिचाने, तुष तंदुलको भेद न जाने।
तैसे मूढमती व्यवहारी। लखे न बंधमोख विधि न्यारी १२१

दोहा।

कुमती बाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत।
माने मोख परंपरा, मन में हरस धरन्त ॥१२२॥
शुद्धातम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोइ।
सो सुनिके तासों कहे, यह शिवपंथ न होइ ॥१२३॥

अज्ञानी और ज्ञानियों की परिणति में भेद। कवित्त।

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि-मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि। ते हिय-अन्ध बंध के करता, परमतत्त्व को भेद न जानहि॥ जिन्हके हिये सुमति की कनिका, बाहिज क्रिया भेष परमानहि। ते समकिती मोख मारगमुख, करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि ॥१२४॥

समयसार का सार। सवैया इकतीसा।

आचारिज कहे जिन वचन को विस्तार, अगम अपार

है कहेंगे हम कितना। बहुत बोलवे सों न मकसूद चुप्प भली, बोलिये सु बचन प्रयोजन है जितनो॥ नाना रूप जलप सों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन भलौ तितनो। शुद्ध परमातम कौ अनुभौ अभ्यास कीजे, यहै मोखपंथ परमारथ है इतनो॥१२५॥

दोहा।

सुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दग दौर।
मुकतिपंथ साधन यहै, वाग जाल सब और॥१२६॥

अनुभव योग्य शुद्ध. आत्मा का स्वरूप।

जगत चक्षु आनन्दमय, ज्ञान चेतना भास।
निर्विकल्प साश्वतसुथिर, कीजे अनभौ तास॥१२७॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व।
ज्ञानगम्य बाधारहित, सो है आतम तत्व॥१२८॥

दोहा।

सर्वविसुद्धीद्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ।
कुंदकुन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गरंथ॥ १२९॥

ग्रन्थ कर्ता का नाम और ग्रन्थ की महिमा।

कुन्द कुन्द मुनिराज प्रवीना, तिन्ह यह ग्रंथ इहांलों कीना।
गाथावद्ध सुप्राकृत बानी, गुरुपरंपरा रीति बखानी १३०
भयो ग्रन्थ जगमें विख्याता, सुनत महासुख पावहि ज्ञाता।

जे नवरस जगमांहि वखाने,ते सब समयसाररस साने १३१

दोहा।

प्रगटरूप संसारमें, नरवस नाटक होइ।
नवरसगर्वित ज्ञानमय, विरला जानै कोइ ॥१३२॥

नवरसों के नाम। कवित्त।

प्रथम सिंगार वीर दूजौ रस, तीजौ रस करुना सुखदायक। हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छट्टम रस बीभच्छ विभायक॥ सप्तम भय अट्ठम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनि कौ नायक। ए नव रस एई नव नाटक, जा जहं मगन सोइ तिहि लायक॥ १३३॥

नवरसों के लौकिक स्थान।

सोभा में सिंगार बसै वीर पुरुषारथ में, हिये में कोमल करुनारस बखानिये। आनन्द में हास्य रुंड मुंड में विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये॥ चिन्ता में भयानक अथाहता में अद्भुत, माया की अरुचि तामें शान्त रस मानिये। येही नव रस भव रूप येई भाव रूप, इन्हको विलेछण सुदृष्टि जागै जानिये१३४

नवरसों के पारमार्थिक स्थान।

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यिम उदार रुख। करुना सम रसरीति, हास हिरदे उछाउ सुख॥ अष्ट करम दल

मलन, रुद्र बरते तिहि थानक। तन विलेछ बीभच्छ, दुन्द दुखदसा भयानक ॥ अद्‌भुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज बैराग्य धुव। नवरस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ॥ १३५ ॥

चौपाई।

जब सुबोध घट में परगासे, तब रस विरस विषमता नासे।
नवरस लखे एक रसमांही, ताते विरसभाव मिटिजांही १३६

दोहा।

सबरस गर्भित मूलरस, नाटक नाम गरथ।
जाके सुनत प्रवान जिय समुझे पन्थ कुपन्थ ॥१३७॥

चौपाई।

बरते ग्रन्थ जगत हितकाजा, प्रगटे अमृतचंद मुनिराजा।
तब तिन्ह ग्रंथ जान अतिनीका, रची बनाइ संस्कृत टीका ॥

दोहा।

सर्व विशुद्धी द्वार लों, आये करत बखान।
तब अचारज भक्तिसों, करे ग्रन्थ गुन गान ॥१३८ ॥

इति श्री समयसार विषै सर्वविशुद्धि द्वार समाप्त।

———

स्याद्वादद्वार ।

स्वामी अमृतचन्द्र की प्रतिज्ञा ।

अद्भुत ग्रन्थ अध्यातम वानी, समुझै कोऊ विरला ज्ञानी ।
यामें स्याद्वाद अधिकारा, ताकौजो कीजै विसतारा ॥१॥
तो गरन्थ अति शोभा पावे, वह मंदिर यह कलश कहावे ।
तबचित अमृतवचनगढ़ि खोले, अमृतचंद आचारज बोले ।२।

कुन्दकुन्द नाटक विषे, कह्यो दरव अधिकार ।
स्यादवादनै साधि मे, कहौं अवस्था द्वार ॥ ३ ॥

कहौं मुकति पद की कथा, कहौं मुकति को पंथ ।
जैसे घृत कारज जहां, तहां कारन दधिमंथ ॥४॥

चौपाई ।

अमृतचन्द बोले मृदुबानी, स्यादवाद की सुनो कहानी ।
कोऊ कहै जीव जगमांही, कोऊ कहै जीव है नांही ॥५॥

दोहा ।

एकरूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग ।
छिनभंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥६॥

दोहा

नय अनन्त इहविधि कही, मिले न काहू कोइ ।
जो सब नय साधन करे, स्यादवाद है सोइ ॥७॥

स्याद्वाद संसार सागर से तारने वाला है ।

स्यादवाद अधिकार अब, कहों जैन कौ मूल ।
जाके जाने जगत जन, लहै जगत जलकूल ॥८॥

नयसमूहपर शिष्यकी शंका और गुरुका समाधान । सवैया ।

शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकि पराधीन,जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिये । जीव है सदीव किधौं नांहि है जगतमांहि, जीव अविनस्वर कि नस्वर कहीजिये ॥ सत गुरु कहै जीव है सदाव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये । जीव पराधीन छिनभंगुर अनेकरूप, नांही तहां जहां परजे परवान कीजिए ॥९॥

पदार्थ स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तिरूप और परचतुष्टय को अपेक्षा नास्तिरूप है। सवैया इकतीसा ।

दर्व खेत काल भाव चारों भेद वस्तु ही में, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये । परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अङ्ग, ताको भेद दर्व परजाइ मध्य जानिये ॥ दरवतो वस्तु खेत सत्ताभूमि काल चाल, सुभाव सहज मूल सकति वखानिये । याही भांति परविकलप बुद्धि कलपना, विवहारदृष्टि अंशभेद परवानिये ॥१०॥

स्याद्वादके सप्त भंग । दोहा ।

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं ।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सबमांहि ॥११॥

एकान्त वादियोंके चौदह नय भेद । सवैया इकतीसा ।

ज्ञानको कारन ज्ञेय आतम त्रिलोक-मेय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है । जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्व में विज्ञान, ज्ञयछेत्र मानज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥ देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अस मांही है । जीव छिनभंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकंत अवस्था मूढ पांही है ॥१२॥

प्रथम पक्षका स्पष्टीकरण और खंडन । सवैया इकतीसा ।

कोऊ मूढ कहै जैसे प्रथम समारि भींति, पीछे ताके ऊपर सु चित्र आछो लेखिये । तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञान रूप कारज विशेषिये ॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोइ सुभाउ ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये । कारन कारज दोउ एकहीमें निहचे पै, तेरो मत सांचो विवहार दृष्टि देखिये ॥१३॥

द्वितीय पक्षका स्पष्टीकरण और खंडन । सवैया इकतीसा ।

कोऊ मिथ्यामती लोकालोक व्यापी ज्ञान मानि, समुझे त्रिलोक पिंड आतम दरब है । याहितें सुछंद भयो डोले मुख हू न बोले, कहै या जगतमें हमारोई परब है । तासों ज्ञाता कहे जीव जगत सों भिन्न पै, जगत को विकासी तोहि याहीते गरब है । जो वस्तु सो वस्तु पररूप सों निराली

सदा, निहचे प्रमान स्याद्वाद में सरव है ॥ १४ ॥

तृतीय पक्षका स्पष्टीकरण और खंडन । सवैया इकतीसा ।

कोऊ पशु ज्ञानकी अनन्त विचित्राई देखे, ज्ञेयको आकार नाना रूप विसतर्यो है । ताहीको विचारि कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकन्त पक्ष लोकनि सों लरयो है ॥ ताको भ्रम भंजबे कों ज्ञानवन्त कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भरयो है । ज्ञायक सुभाइ परजाइ सों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्यो है ॥१५॥

चतुर्थ पक्षका स्पष्टीकरण और खंडन । सवैया इकतीसा ।

कोऊ कुधी कहै ज्ञानमांहि ज्ञेय को अकार, प्रतिभासि रह्यौ है कलंक ताहि धोइए । जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइए ॥ तासों स्याद्वादी कहै ज्ञानको सुभाव यहै, ज्ञेय को आकार वस्तु नांहि कहा खोइए । जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे जदपि तथापि आरसी विमल जोइए ॥१६॥

पंचमपक्षका स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ अज्ञ कहै ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम, जोलों विद्यमान तौलों ज्ञान परगट है । ज्ञेय के विनाश होत ज्ञान को विनाश होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यात की अलट है ॥ तासों समकितवंत कहै अनुभौ कहानि, परजै प्रवान ज्ञाना

नानाकार नट है। निरविकलप अविनस्वर दरब रूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तु सों अव्यापक अघट है ॥ १७ ॥

छठे पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन।

कोऊ मन्द कहे धर्म अधर्म आकासकाल, पुद्गलजीव सब मेरो रूप जग में। जाने न मरम निज माने आपा पर वस्तु, बांधे दिढ़ करम धरम खोवे डग में॥ समकिती जीव सुद्ध अनुभौ अभ्यासैं तातें, पर कौ ममत्व त्याग करे पगपग में। अपने सुभाव में मगन रहे आठों जाम, धारावाही पथिक कहावे मोखमग में ॥ १८ ॥

सप्तम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन।

कोऊ सठ कहे जेतो ज्ञेय रूप परवान, तेतो ज्ञान तातें कहूं अधिक न और है। तिहूं काल परक्षेत्र व्यापि परनयो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है॥ जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेय सों अव्यापक जगत सिरमौर है। ज्ञान की प्रभा में प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथापि थित न्यारी न्यारी ठौर है॥१९॥

अष्टम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन।

कोऊ शून्यवादी कहे ज्ञेय के विनाश होत, ज्ञान को विनाश होत कहौ कैसे जीजिये। तातें जीवितव्यता की थिरता निमित्त अब, ज्ञेयाकार परिनामनिको नास कीजिये॥

सत्यवादी कहे भैया हूजे नाहीं खेद खिन्न, ज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये। ज्ञानकी शकति साधि अनुभौ दशा अराधि, करम को त्याग के परम रस पीजिये ॥ २० ॥

नवम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोऊ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसैगी तब ही जीव मरैगो छाया कौ सौ छल किधौं माया कौ सौ परपंच, काया में समाइ फिरि काया को न धरेगो ॥ सुधी कहै देह सों अव्यापक सदीव जीव, समै पाइ परको ममत्व परिहरैगो। अपने सुभाउ आइ धारना धरामें धाइ, आपमें मगन व्हैके आपा शुद्ध करैगो ॥ २१ ॥

दोहा

ज्यों तन कंचुक त्यागसों, विनसे नांहि भुजंग।
त्यों शरीर के नाशतें, अलख अखंडित अंग ॥

दशम पक्ष का स्पष्टीकरण और खंड

कोउ दुरबुद्धि कहै पहिले न हुतो जीव, देह उपजत उपज्यो है अब आइके। जोलों देह तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहैगो अलख ज्योति ज्योति में समायके ॥ सद बुद्धि कहै जीव अनादि को देहधारी, जब ज्ञान होइगो कबहि काल पाइके। तबही सों पर तजि अपनो सरूप भजि, पावैगो परम पद करम नसाइके ॥ २३ ॥

ग्यारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेय के आकार, परिनयो ज्ञान ताते चेतना असत है । ज्ञेय के नसत चेतना कौ नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेय को आकार धरे ज्ञेय सों बिरत है । चेतना के नाश होत सत्ता को विनाश होय, याते ज्ञानचेतना प्रवान जीवतत है ।.२४॥

बारहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ महामूरख कहत एक पिंडमांहि, जहांलों अचित चित अंग लहलहे हैं । जोगरूप भोगरूप नानाकारज्ञेय रूप, जेतेभेद करमके तेते जीव कहे हैं ॥ मतिमान कहे एक पिंडमाहि एक जीव, ताहि के अनन्त भाव अंस फैलि रहे हैं । पुग्गलसों भिन्न कर्म जोग सों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता सुभाव गहे हैं ॥ २५ ॥

तेरहवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन ।

कोउ एक छिनवादी कहे एक पिंडमांहि, एक जीव उपजत एक विनसतु है । जाही समै अन्तर नवीन उतपति ताही समै प्रथम पुरातन बसतु है ॥ सरवंग वादी कहे जैसे जलवस्तु एक, सोई जलविविध तरंगनि लसतु है । तैसे एक आतम दरव गुन परजैसों, अनेकभयो पै एकरूप दरसतु है

चौदहवे पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन।

कोऊ बालबुद्धि कहे ज्ञायक सकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये। ज्ञायक सकति काल पाइ मिटि जाइ जब, तब अविरोध बोध विमल बखानिये॥ परम प्रवीन कहे ऐसी तो न बनें बात, जैसे बिनु परगास सूरज न मानिये। तैसें बिनु ज्ञायकसकति न कहावे ज्ञान, यह तो न परोक्ष परतक्ष परवानिये॥२७॥

स्याद्वाद की प्रशंसा। दोहा।

इहविधि आतम ज्ञान हित, स्याद्वाद परवान।
जाके वचन विचारसों, मूरख होइ सुजान॥२८॥
स्याद्वाद आतम दशा ता कारन बलवान।
शिव साधक बाधा रहित, अखै अखंडित आन॥२९॥

इति नाटक समयसार विषै स्याद्वाद द्वार समाप्त।

———

साध्य साधक द्वार

प्रतिज्ञा दोहा।

स्यादवाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार।
अमृतचंद मुनिवर कहैं, साधक साधि दुवार ॥१॥

जोई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरुलघु, अजोगी अमूरतिक परदेशवंत है। उतपतिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण भेदसों अनंत है॥ सोई जीव दरब प्रमान सदा एकरूप, ऐसौ शुद्ध निहचैं सुभाउ विरतंत है। स्यादवाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेकौं साधक सिधंत है ॥२॥

जीव की साध्य साधक अवस्थाओं का वर्णन। दोहा।

साधि शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महन्त।
साधक अविरत आदि बुध, छीन मोह परजंत ॥३॥

साधक अवस्था का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

जाकौ अधो अपूरव अनिवृत्ति करनकौ, भयो लाभ भई गुरु वचन की बोहनी। जाके अनन्तानुबंध क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी॥ सातों परकिति खपीं किंवा उपसमी जाके, जगी उरमांही समकित कला सोहनी। सोइ मोच्छ साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शकति गुनथानक अरोहनी ॥४॥

सोरठा ।

जाको मुकति समीप, भई भवस्थिति घट गई ।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन ॥५॥

सद्गुरु को मेघ की उपमा । दोहा ।

ज्यों बरषे बरषा समै, मेघ अखंडित धार ।
त्यों सद्गुरु बानी खिरै, जगत जीव हितकार ॥६॥

धनसम्पत्ति से मोह हटाने का उपदेश । सवैया तेईसा ।

चेतनजी तुमजागि विलोकहु, लाग रहे कहां माया कि तांई । आए कहींसों कहां तुम जाउगे, माया रहेगी जहां कि तहांई ॥ माया तुह्मारि न जाती न पांति न, वंस कि वेल न अंस कि झांई । दासी किए बिनु लातनि मारत, ऐसी अनीति न कीजे गुसांई ॥७॥

माया छाया एक हैं, घटे बढे छिन मांहि
इन की संगत जे लगे, तिनहिं कहूँ सुख नाहि ॥८॥

कुटुम्बियों आदि से मोह हटाने का उपदेश ।

लोकनिसों कछु नातो न तेरो, न तोसों कछु इह लोक कौ नातो । ए तो रहे रमि स्वारथ के रस, तू परमारथ के रस मातो ॥ ए तन सो तन में तन से जड़, चेतन तू तनसों नित हांतो । होहु सुखी अपनो बल फेरिकें, तारि कें राग विरोध कौ तांतो ॥ ९ ॥

इन्द्रादि उच्चपदकी चाह अज्ञानता है।

जे दुरबुद्धी जीव, ते उतंग पदवी चहैं।
जे समरसी सदीव, तिन्हको कछू न चाहिये ॥ १० ॥

समताभाव मात्र ही में सुख है।

हांसी में विषाद बसे, विद्यामें विवाद बसे, काया में मरन गुरुवर्त्तन में हीनता। सुचि में गिलानि बसे प्रापति में हानि बसे, जैमें हारि सुन्दर दशा में छबि-छीनता॥ रोग बसे भोग में संयोग में वियोग बसे, गुन में गरव बसे सेवा मांहि दीनता। और जगरींत जेती गर्भित असाता सेती, साता की सहेली है अकेली उदासीनता ॥ ११ ॥

जिस उन्नतिकी फिर अवनति है वह उन्नति नहीं है।

जिहि उतंगचढि फिर पतन, नहिं उतंग वह कूप।
जिहि सुखअन्तर भय बसे, सो सुख है दुखरूप ॥१२

जो विलसेसुखसम्पदा, गये तहां दुख होइ।
जो धरती बहु तृणवती, जरे अगनिसों सोइ ॥१३॥

श्रीगुरु के उपदेश में ज्ञानी जीव रुचि लगाते हैं।

सबदमांहि सतगुरु कहे प्रगट रूप निज धर्म।
सुनत विचक्षण सरदहै, मूढ न जाने मर्म ॥१४॥

ऊपरके दोहे का दृष्टांत द्वारा समर्थन।

जैसे काहू नगर के वासी दो पुरुष भूले, तामें एक नर

सुष्ट एक दुष्ट उरको। दोउ फिरें पुर के समीप परे ऊबट में, काहू और पथिक से पूछो पन्थ पुर को॥ सोतो कहै तुम्हारो नगर है तुम्हारे ढिग, मारग दिखावे समुझावे खोज पुरको। एते पर सुष्ट पहिचाने पै न माने दुष्ट. हिरदे प्रवान तैसे उपदेश गुरुको॥१५॥

सवैया इकतीसा।

जैसे काहू जंगल में पावसकी समै पाइ, अपने सुभाव महामेघ वरषतु है। आमल कषाय कटुतीक्षन मधुर खार, तैसो रस बाढे जहां जैसो दरखतु है॥ तैसें ज्ञानवंत नर ज्ञानकी बखान करे, रस कौ उमाहू है न काहू परखतु है। वहै धुनि सुनि कोउ गहै कोउ रहै सोइ, काहू कों विषाद होइ कोउ हरषतु है॥१६॥

दोहा।

गुरु उपदेश कहा करे, दुराराधि संसार।
वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार॥१७॥

पांच प्रकार के जीव।

डूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक शुद्ध।
ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध॥ १८॥

डूंघा जीव का लक्षण।

जाकी परम दशाविषें, करम कलंक न होइ।

डूंगा अगम अगाध पद, वचनअगोचर सोइ ॥१९॥

चूंघा जीव का लक्षण ।

जे उदास ह्वै जगत सों, गहे परम रस प्रेम ।
सो चूंघा गुरु के वचन, चूंघे बालक जेम ॥२०॥

सूंघा जीव का लक्षण ।

जो सुबचन रुचि सों सुनै, हिए दुष्टता नांहि ।
परमारथ समुझै नहीं, सो सूंघा जगमांहि ॥२१॥

ऊंघा जीव का लक्षण ।

जाकों विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट ।
सो ऊंघा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२२॥

घूंघा जीव का लक्षण ।

जाके श्रवन बचन नहिं, नहिं मन सुरति विराम ।
जड़ता सों जड़वत भयो, घूंघा ताको नाम ॥२३॥

पांच प्रकार के जीवों का विशेष वर्णन । चौपाई ।

डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ, सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ ।
घूंघा घोरविकल संसारी, चूंघाजीव मोख अधिकारी ॥

चूंघा जीव का वर्णन । दोहा ।

चूंघा साधक मोक्ष को, करे दोष दुखनाश ।
लहे मोख संतोष सों, वरनों लच्छन तास ॥२५॥
कृपा प्रसम संवेग दम, अस्तिभाव वैराग ।
ए लच्छन जाके हिये, सप्त व्यसन को त्याग ॥२६॥

सप्त व्यसन के नाम। चौपाई।

जूवा आमिष मदिरा दारी, आखेटक चोरी पर नारी।
एई सातव्यसन दुखदाई, दुरितमूल दुर्गतिके भाई २७

व्यसनों के द्रव्य और भाव भेद।

दर्वित ए सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम।
भावित अन्तर कलपना, मृषा मोह परिनाम ॥२८॥

सप्त भाव व्यसनों का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

अशुभमें हारि शुभ जीति यहै दूत कर्म, देह की मगनताई यहै मांस भखिवो। मोह की गहलसों अजान यहै सुरापान, कुमति की रीति गनिकाको रस चखिवो॥ निरदे व्है प्राणघात करिवो यहै शिकार, परनारी संग परबुद्धि को परखिवो। प्यारसों पराई सोंज गहिवकी चाह चोरी, येई सातों व्यसन बिडारैं ब्रह्म लखिवो ॥२९॥

साधक जीवका पुरुषार्थ। दोहा।

विसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार।
किये प्रकट घटसिंधु मथि, चौदह रतन उदार ॥३०॥

चौदह भाव रत्न। सवैया इकतीसा।

लक्ष्मी सुबुद्धि, अनुभूति कौस्तुभमणि, वैराग कलपवृक्ष संख सुवचन है। ऐरावत उद्यिम प्रतीति रंभा, उदै-विष, कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है॥ ध्यान चाप

प्रेम रीति मदिरा विवेक वैद्य, शुद्धभाव चन्द्रमा तुरंगरूप मन है। चौदह रतन ये प्रकट होंइ जहां तहां, ज्ञान के उद्योत घट सिन्धुको मथन है ॥३१॥

चौदह रत्नों में कौन हेय और कौन उपादेय हैं। दोहा।

क्रिये अवस्थामें प्रकट, चौदह रतन रसाल।
कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल ॥३२॥
रमा सख विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय।
मनि रंभा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥३३॥
इह विधि जो परभाव विष, वमे रमे निजरूप।
सो साधक शिवपंथ को, चिद् वेदक चिद्रूप ॥३४॥

मोक्ष मार्गके साधक जीवों की अवस्था। कवित्त छन्द।

ज्ञान दृष्टि जिन्हके घट अन्तर, निरखे दरब सुगुन परजाइ। जिन्हके सहजरूप दिनदिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाइ॥ जे केवलिप्रनीत मारग मुख, चितैं चरन राखें ठहराइ। ते प्रवीन करि छीन मोह मल, अविचल होंइ परमपद पाइ ॥३५॥

शुद्ध अनुभव से मोक्ष और मिथ्यात्व से संसार है। सवैया इकतीसा।

चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन सम्यक मिथ्यात नाश करिके। निरदुंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिनि, कीनो मोखकारन अवस्था ध्यान धरिके॥

सोई शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके। मिथ्यामति अपनो सरूप न पिछाने तातैं, डोले जगजालमें अनन्त काल भरिके॥ ३६॥

आत्मअनुभव का परिणाम।

जे जीव दरवरूप तथा परजायरूप, दोऊ नै प्रवान वस्तु शुद्धता गहतु हैं। जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा विषै सों विमुख व्है विरागता वहुत है॥ जे ग्राह्यभाव त्यागभाव दुहूं भावन कों, अनुभौ अभ्यासविषै एकता करतु हैं। तेई ज्ञान क्रिया के आराधक सहज मोख, मारग के साधक अवाधक महतु हैं॥ ३७॥

ज्ञान क्रिया का स्वरूप। दोहा।

विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष।
ता परिणतिकों बुध कहैं, ज्ञान क्रिया सों मोख॥३८॥

सम्यक्त्व से क्रमशः ज्ञान की पूर्णता होती है।

जगी शुद्ध समकित कला, वगी मोखमग जोइ।
वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ॥ ३९॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम।
जैसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम॥ ४०॥

सम्यक्त्वकी महिमा।

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो पर-

गास सुद्ध समकित भान कौ। जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अवाची भगवानकौ॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्यम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानकौ। ताही सु विचच्छन को संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवान कौ॥ ४१॥

सम्यक्त्व ज्ञान की महिमा।

जाके हिरदे में स्याद्वाद साधना करत, शुद्ध आतमा कौ अनुभव प्रगटभयौ है। जाके संकलप विकलपके विकार मिटि, सदा काल एकीभाव रस परिनयो है॥ जिनि बंध विधि परिहार मोख अंगीकार, ऐसो सुविचार पच्छ सोउ छांडि दयो है। जाकी ज्ञान महिमा उदोत दिन दिन प्रति सोई भवसागर उलंघि पार गयो है॥ ४२॥

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूपजीव कहिये। दीसे एक नैकी प्रतिपच्छी न अपर दूजी, नैकों न दिखाइ वाद विवाद में रहिये॥ थिरता न होइ विकलप की तरंगनि में, चंचलता बढ़े अनुभौ दशा न लहिये। तातें जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये॥ ४३॥

आत्मा द्रव्य क्षेत्र काल भाव से अखंडित है।

जैसे एक पाको आंवफल ताके चारि अंस, रस जालो

गुठली छिलक जब मानिये। यों तो न बनें पै ऐसें बने जैसे वहे फल, रूपरस गंध फास अखंड प्रवानिये॥ तैसें एक जीव कौ दरव क्षेत्र कालभाव, अंसभेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये। दर्वरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप, चारोंरूप अलख अखंड सत्ता मानिये॥ ४४॥

ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप।

कोऊ ज्ञानवान कहे ज्ञान तो हमारौ रूप, ज्ञेय षटदर्व सो हमारौ रूप नांही है। एकनै प्रवान ऐसें दूजी अब कहों जैसे, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है॥ तैसे ज्ञाता मेरा नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अनन्त मुझ पाही है। ता कारण वचनके भेद भेद कहै कोऊ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय को विलास सत्ता मांही है॥ ४५॥

स्वपर प्रकासक सकति हमारी, तातें वचन भेद भ्रमभारी॥
ज्ञेयदसा द्विविधा परगासी, निजरूपा पररूपा भासी॥४६॥

दोहा।

निजरूपा आतम सकति, पररूपा परवस्त।
जिन लख लीनो पेच यह, तिनि लखलियो समस्त॥

स्याद्वाद में जीव का स्वरूप।

करम अवस्था में अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है। उभै नै प्रवान समकाल सुद्धासुद्धरूप,

ऐसो परजाय धारा जीव नाना रंग है ॥ एक ही समै में त्रिधारूप पै तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति सरवंग है। यह स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जानै, मूरख न माने जाको हियो दृग भंग है ॥ ४८ ॥

सवैया इकतीसा।

निहचे दरव दृष्टि दीजै तब एकरूप, गुन परनति भेद भावसों बहुत है। असंख प्रदेश संयुगत सत्ता परवान ज्ञान की प्रभासों लोकालोक मानजुत है ॥ परजे तरंगनि के अंग छिनभंगुर हैं, चेतना सकति सों अखंडित अचुत है। सोहै जीव जगत विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है ॥ ४९ ॥

सवैया इकतीसा।

विभाव सकति परिनतिसों विकल दीसै, सुद्ध चेतना विचारते सहज सन्त है। करम संयोग सों कहावे गति को निवासी, निहचे सरूप सदा मुकत महन्त है॥ ज्ञायक सुभाउ धरे लोकालोक परगासी, सत्ता परवान सत्ता परगासवंत है। सोहै जीव जानत जहांन कौतुकी महान, जाकी कीरति कहां न अनादि अनंत है ॥५०॥

साध्य स्वरूप केवल ज्ञानका वर्णन। सवैया इकतीसा।

पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध

जगमांही जगमगी है। ज्ञायक प्रभा में नाना ज्ञेय की अवस्था धरि, अनेक भई पै एकता के रस पगी है॥ याही भांति रहेगी अनन्त काल परजंत, अनतशकति फोरि अनंत सों लगी है। नरदेह देवल में केवल सरूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योति की सिखा समाधि जगी है॥५१॥

अमृत चन्द्रकला के तीन अर्थ। सवैया इकतीसा।

अक्षर अरथ में मगन रहे सदा काल, महासुख देवा जैसी सेवा काम गविकी। अमल अबाधित अलख गुन गावना है, पावना परमशुद्धभावना है भविकी॥ मिथ्यात तिमिर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उभै जाम लों किरन दीपे रवि की। ऐसी है अमृत चन्द्रकला त्रिधारूप धर, अनुभौ दशा गरथ टीका बुद्धि कवि की॥५२॥

दोहा।

नाम साधि साधक कह्यो, द्वार द्वादसम ठीक।
समयसारनाटक सकल पूरन भयो सटीक॥ ५३ ॥

ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की आलोचना। दोहा।

अब कविजन पूरन दशा, कहै आपसों आप।
सहज हरष मनमें धरै, करै न परचाताप॥ ५४ ॥

सवैया इकतीसा।

जो मैं आपा छांडि दीनों पररूप गहि लीनो, कीनो न

तहां जहां मेरो थल है। भोगनि को भोगी रहि करम को कर्ता भयो, हिरदे हमारे राग दोष मोह मल है। ऐसी विपरीति चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरी क्रिया की ममत्वता कौ फल है। ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सों उदासी वह, मिथ्या मोहनिद्रा में सुपन कोसो छल है॥

दोहा।

अमृतचन्द मुनिराज कृत, पूरन भयो गरन्थ।
समयसारनाटक प्रकट पंचमगतिको पंथ॥ ५६॥

इति समयसारनाटकग्रन्थअमृतचन्द्आचार्यकृत संपूर्ण।

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार

मंगलाचरण। दोहा।

जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमे बनारसिताहि।
जाकी भगति प्रभावसों, कीनो ग्रंथ निबाहि॥ १॥

जिन प्रतिबिम्ब का माहात्म्य।

जाके मुख दरस सों भगत के नैननि कों, थिरता की बानी चढी चंचलता बिनसी। मुद्रा देखे केवलीकी मुद्रा यादि आवे जहां, जाके आगें इन्द्रकी विभूति दिसे तिनसी॥ जाको जस जपत प्रकास जगे हिरदेमें, सोई सुद्ध मति होइ

हुती जू मलिन सी । कहत बनारसी सुमहिमा प्रकट जाकी,
सोहै जिनकी छवि सुविद्यमान जिनसी ॥२॥

जिन मूर्ति पूजकोंकी प्रशंसा ।

जाकेउर अन्तर सुदृष्टिकी लहरि लसी, बिनसी मिथ्यात मोह निद्राकी ममारखी । सैली जिन सासनकी फैली जाके घट भयो, गरब को त्यागी षट दरब को पारखी ॥ आगम के अच्छर पड़े हैं जाके श्रवण में, हिरदै भन्डार में समानी वानो आरखी । कहत बनारसी अलप भवस्थित जाकी, सोइ जिन प्रतिमा प्रवाने जिन सारखी ॥३॥

चौपाई ।

जिन प्रतिमा जन दोष निकन्दे, सीस नमाइ बनारसि बन्दे ।
फिरि मनमांहि विचारे ऐसा, नाटकग्रन्थ परमपद जैसा ॥
परम तत्व परचै इस मांही, गुनथानककी रचना नांही ।
यामें गुनथानक रस आवे, तो गरन्थ अतिशोभा पावे ॥

दोहा ।

यह विचारि संक्षेपसों, गुनथानक रस चोज ।
वरनन करे बनारसी, कारन शिव पथ खोज ॥६॥
नियत एक विवहार सों, जीव चतुरदश भेद ।
रंग जोग बहुविधि भयो, ज्यूं पट सहजसुफेद ॥७॥

चौदह गुणस्थानोंके नाम ।

प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुर्थ अव्रत

पंचमो विरतरंच है। छट्ठो परमत्तनाम सातमों अपरमत्त, आठमों अपूरवकरन सुखसंच है॥ नौमो अनिवृत्ति भाव दशमो सूक्षम लोभ, एकादशमों सु उपसांत मोह बंच है। द्वादशमों छीनमोह तेरहों सजोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है॥८॥

मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन।

बरनेसब गुनथान के, नाम चतुरदश सार।
अब बरनों मिथ्यात के, भेद पंच परकार॥९॥

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पांच मिथ्यात्वका उदय है।

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहीत, दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है। तीजो विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाको, चौथो संसै जहां चित भौंरकोसा पोत है॥ पंचमो अज्ञान अनाभोगिक गहलरूप, जाके उदै चेतन अचेतनसो होत है। एई पांचो मिथ्यात भ्रमावे जीव कों जगमें, इन्ह के विनास समकितको उदोत है॥१०॥

एकान्त मिथ्यात्वका स्वरूप। दोहा।

जो इकंत नय पक्ष गहि, छके कहावै दक्ष।
सो इकंतवादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष॥११॥

विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप।

ग्रंथ उकति पथ उथपि जो, थापे कुमत स्वकीउ।

सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीती जीउ ॥१२॥

विनय मिथ्यात्व का स्वरूप।

देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिने समान जु कोइ।
नमें भगतिसों सबनिको विनय मिथ्याती सोइ॥१३॥

संशय मिथ्यात्व का स्वरूप।

जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हैरान।
थिर व्है तत्व न सद्दहै, सो जिय संशयवान॥१४॥

अज्ञान मिथ्यात्व का स्वरूप।

जाको तन दुख दहल सों, सुरति होति नहिं रंच।
गहलरूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच॥१५॥

मिथ्यात्वके दो भेद।

पंचभेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ।
सादिअनादि सरूप अब, कहों अवस्था दोइ॥१६॥

सादि मिथ्यात्व का स्वरूप।

जो मिथ्यादल उपसमें, ग्रन्थ भेद बुध होइ।
फिरे आवे मिथ्यात में, सादि मिथ्याती सोइ॥१७॥

अनादि मिथ्यात्व का स्वरूप।

जिन गरंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल वहिर्मुख जीव॥१८॥

सासादन गुणस्थानका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा।

कह्यो प्रथम गुण थान यह, मिथ्यामत अभिधान।

करूं अलप वरनन, सासादन गुण थान ॥१६॥

सासादन गुणस्थान का स्वरूप।

जैसें कोउ क्षुधित पुरुष खाइ खीर खांड, वोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे है। तैसे चढ़ि चौथे पांचए के छट्ठे गुन थान, काहु उपसमी को कषाइ उदे आवे है॥ ताहि समै तहां सौं गिरें पधानदशा त्यागि, मिथ्यात अवस्था-कों अधोमुख व्है धावे है। बीच एक समे वा छ आवली प्रवांन रहै, सोइ सासादन गुनथानक कहावे है॥ २०॥

तीसरा गुणस्थान कहने की प्रतिज्ञा

सासादन गुन थान यहै, भयो समापत बीय।
मिश्रनाम गुन थान अब, बरनन करों त्रितीय २१

तृतीय गुणस्थान का स्वरूप।

उपसमी समकिती केतो सादि मिथ्यामती, दुहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहै है। अनंतानुबंधी चौकरीको उदे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहै है॥ जहां सद्दहन सत्यासत्य रूप समकाल, ज्ञानभाव मिथ्या-भाव मिश्र धारा बहै है। जाकी थिति अंतर मुहूरत उभय रूप, एसौ मिश्र गुनथान अचारज कहै है ॥२२॥

चौथे गुणस्थानका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा।

मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भाषि।

अथ चतुर्थ गुनथानविधि, कहों जिनागमसाषि ॥२३॥

चौथे गुणस्थानका वर्णन। सवैया इकतीसा।

केई जीव समकित पाइ अर्ध पुद्गल, परावर्त्त काल तांई चोखे होय चित्तके। केई एक अंतर मुहूरत में गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदै मोख वितके॥ तातें अन्तर मुहूरतसों अर्द्ध पुद्गल लों, जेते समें होहिं तेते भेद समकितके। जाही समें जाको जब समकित होइ सोई, तबहीसों गुन गहे दोष दहे इतके ॥२४॥

दोहा।

अथ अपूर्व अनवृत्ति त्रिक, करन करे जो कोइ।
मिथ्या गंठि विदार गुन, प्रगटे समकित सोइ॥२५॥

सम्यक्त्व के आठ विवरण।

समकित उतपति चिन्हगुन, भूषन दोष विनास।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनों विवरन तास ॥२६॥

सम्यक्त्व का स्वरूप। चौपाई।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिनदिन रीति गहै समताकी॥
छिन छिन करे सत्यको साको। समकित नाम कहावे ताको २७

सम्यक्त्व की उत्पत्ति।

कै तो सहज सुभाउकै, उपदेशे गुरु कोइ।
चिहुँ गति सेंनी जीवकों, सम्यक् दरशन होइ ॥२८॥

सम्यक्त्वके चिन्ह।

आपा परचे निज विषैं, उपजे नहिं संदेह।
सहज प्रपंचरहित दशा, समकित लच्छण एह ॥२९॥

सम्यक्त्व के आठ गुण।

करुना वच्छल सुजनता, आतमनिंदा पाठ।
समता भगति विरागता, धरमराग गुनआठ ॥३०॥

सम्यक्त्व के पांच भूषण।

चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादेयवानि।
धीरज हरष प्रवीनता, भूषन पंच वखानि ॥३१॥

सम्यग्दर्शन पच्चीस दोषवर्जित होता है।

अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसौं एष ॥३२॥

आठ महामद के नाम।

जाति लाभकुल रूपतप, बलविद्या अधिकार।
इन्हको गरव जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥३३॥

आठ मलों के नाम।

आसंका अस्थिरता वांछा, ममता दृष्टि दशा दुरगंछा।
वत्सलरहित दोष-पर भाषे, चित प्रभावनामांहि न राखे ॥

छह अनायतन।

कुगुरु कुदेव कुधर्म-धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।

इनकी करै सराहना, यह षडायतन कर्म ॥३५॥

तीन मूढ़ता के नाम और पच्चीस दोष।

देवमूढ़ गुरुमुढता, धर्ममूढ़ता पोष।

आठ आठ षटतीनि मिलि, एपचीस सबदोष ॥३६॥

पांच कारणों से सम्यक्त्व का विनाश होता है।

ज्ञान गर्व मतिमंदता, निठुर वचन उदगार।

रुद्रभाव आलस दसा, नास पंच परकार। ३७॥

सम्यग्दर्शन के पांच अतिचार।

लोकहास भय भोगरुचि, अग्रसोच थित चेव।

मिथ्या आगम की भगति, मृषा दर्सनी सेव ॥३८॥

चौपाई।

अतीचार ए पंच प्रकारा, समल करहि समकितकी धारा।
दूषन भूषन गति अनुसरनी, दसा आठ समकितकी वरनी ॥

मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियों के नाम।

प्रकृति सात अब मोहकी, कहों जिनागम जोइ।

जिन्हको उदै निवारिकै, सम्यकदरशन होइ ॥ ४० ॥

सवैया इकतीसा।

चारित मोहकी चारि मिथ्यात की तीनि तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी। बीजी महामान रस भीजी मायामई तीजी, चौथो महालोभ दसा परिगह पोहनी ॥

पांचइ मिथ्यातमति छठी मिश्रपरिनति, सातई समै प्रकृति समकित मोहनी । एई षट विग-वनितासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ ४१ ॥

सम्यक्त्वों के नाम । छप्पय ।

सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित । सात प्रकृति छय करन-हार छायिकी अखंडित ॥ सात मांहि कछु खिपहिं, कछुक उपसम करि रक्खे । सो छय-उपसमवत, मिश्र समकित रस चक्खे । षट प्रकृति उपशमै वा खिपै, अथवा छय उपशम करे । सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे ॥ ४२ ॥

सम्यक्त्व के नव भेदों का वर्णन ।

छय उपसम वरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार ।
छायक उपशम जुगलयुत, नौधा समकित धार ॥४३॥

क्षयोपशम सम्यक्त्व के तीन भेदों का वर्णन ।

चारि खिपहि त्रय उपसमहि, पनछय उपसम दोइ ।
छै षट उपसम एक यों, छय उपसम त्रिक होइ ॥४४॥

वेदक सम्यक्त्व के चार भेद ।

जहां चारि प्रकृती खिपहिं, द्वै उपसम इक वेद ।
छयउपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ॥४५॥
पंच खिपैं इक उपसमैं, इक वेदे जिहि ठौर ।

सो छयउपसम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥४६॥
छय षट वेदै एक जो, छायक वेदक सोइ।
षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसमवेदक होइ ॥४७॥

क्षायिक व उपशमसम्यक्त्वका स्वरूप न कहनेका कारण।

छायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद माँहि।
कही प्रकट अब पुनरुकति, कारन वरनी नांहि ॥४८॥

नव प्रकार के सम्यक्त्वों का विवरण।

छय उपसम वेदक खिपक, उपसम समकित चारि।
तीनचारिइकइकमिलत,सब नव भेद विचारि ॥ ४९ ॥

प्रतिज्ञा। सोरठा।

अब निहचे विवहार, अरु सामान्य विशेषविधि।
कहों चारि परकार, रचना समकित भूमिकी ॥ ५० ॥

सम्यक्त्व के चार प्रकार।

मिथ्यामति गांठि भेदि जगी निरमल ज्योति,जोगसों अतीत सोतो निहचे प्रवानिये। वहै दुन्ददसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुत ज्ञान भेद विवहार मानिये॥ चेतना चिहन पहिचान आपापर वेदे, पौरुष अलप ताते समान बखानिये। करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय गेय उपादेयसों विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

चतुर्थ गुणस्थान के वर्णन का उपसंहार।

थिति सागर तेतीस, अन्तरमुहूरत एक वा।

अविरतसमकितरीति, यह चतुर्थ गुनथान इति ॥५२॥

पंचम गुणस्थान।

अब बरनों इकवीसगुन, अरु बावीसअभच्छ।
जिन्ह के संग्रह त्यागसों, सोहे श्रावक पच्छ ॥५३॥

श्रावक के २१ गुण।

लज्जावन्त दयावन्त प्रसन्न प्रतीतवन्त, परदोषको ढकैया परउपकारी है। सोमदृष्टि गुनग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, सिष्ट-पच्छी मिष्टवादी दीरघ विचारी है॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ न दीन न अभिमानी मध्य विवहारी है। सहजै विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसा, श्रावक पुनीत इकबीस गुनधारी है ॥५४॥

बाईस अभक्ष्य।

ओरा घोरबरा निसिभोजन, बहुबीजा बैंगन सन्धान।
पीपर बर ऊमर कठूंबर पाकर जो फल होइ अजान॥
कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुसार चलित रस, जिन-मत ए बावीस अखान ॥ ५५ ॥

प्रतिज्ञा।

अब पंचम गुनथान की, रचना बरनों अल्प।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥५६॥

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम ।

दर्शनविशुद्धकारी बारह विरतधारी, सामायकचारी पर्व पोसह विधि वहे । सचित्त को परिहारी दिवा अपरस नारी, आठोंजाम ब्रह्मचारी निरारम्भी व्है रहे ।। पाप परिग्रह छंडे पापकीन शिक्षा मंडे, कोऊ याके निमित्त करे सो वस्तु न गहे । एते देसव्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हें भगवन्त जी कहे।। ५७ ।।

प्रतिमा का स्वरूप ।

संयमअंस जग्यो जहां, भोग अरुचि परिनाम ।
उदय प्रतिज्ञा को भयो, प्रतिमा ताको नाम ।।५८।।

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप ।

आठ मूलगुण संग्रहे, कुविसन क्रिया न कोइ ।
दर्शन गुन निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोइ ।।५९।।

व्रत प्रतिमा का स्वरूप ।

पंच अनुव्रत आदरे, तीन गुणव्रत पाल ।
शिक्षाव्रत च्यारो धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ।।६०।।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप ।

दर्वभाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक ।
तजि ममता समता गहे, अन्तरमुहुरत एक ।।६१।।
जो अरिमित्र समान विचारै, आरत रुद्र कुध्यान निवारै ।

संजम सहित भावना भावे, सो सामायिकवंत कहावे ॥६२॥

चौथी प्रतिमा का स्वरूप।

सामायक कीसी दसा, चार पहर लों होइ।
अथवा आठ पहर रहे, पोसह प्रतिमा सोइ ॥६३॥

पांचवीं प्रतिमा का स्वरूप।

जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर।
सो सचित्तत्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥६४॥

छठी प्रतिमा का स्वरूप।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले, तिथिआये निशिद्योस संभाले।
गहि नौबाडि करे व्रतरच्छा, सो षटप्रतिमा साधक अच्छा ॥६५॥

सातवीं प्रतिमा का स्वरूप।

जो नववाडिसहित विधि साधे, निशिदिन ब्रह्मचर्य आराधे।
सो सप्तमप्रतिमाधर ज्ञाता, शीलशिरोमनि जगतविख्याता ॥६६॥

नव वाड़ि के नाम।

तिय थल वास प्रेमरुचि-निरखन, दे परीछ भाषन मधुवैन। पूरब भोग केलि रस-चिन्तन, गुरु आहार लेत चित चैन॥ करिसुचितन श्रृंगार बनावत, तिय परयंक मध्य सुखसैन। मनमथ कथा उदरभरि भोजन, ए नववाडि जान मतजैन ॥६७॥

आठवीं प्रतिमा का स्वरूप।

जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ।

सो अष्टम प्रतिमाधनी कुगति विजै रनथंभ ॥ ६८ ॥

नवमी प्रतिमा का स्वरूप।

जो दसधा परिग्रह को त्यागी, सुख संतोष सहित वैरागी।
समरससंचितकिंचितग्राही, सो श्रावक नौ प्रतिमावाही ॥६९॥

दशमी प्रतिमा का स्वरूप।

परकों पापारंभ को, जो न देइ उपदेश।
सो दशमीप्रतिमासहित, श्रावक विगतकलेश ॥ ७० ॥

ग्यारवीं प्रतिमा का स्वरूप।

जो सुछन्द वरतै तजि डेरा, मठ मंडप महिं करै बसेरा।
उचित अहार उदंड विहारी, सो एकादश प्रतिमाधारी ७१

प्रतिमाओं के सम्बन्ध में मुख्य उल्लेख।

एकादश प्रतिमा दशा, कही देशब्रत मांहि।
वही अनुक्रम मूलसों, गहो सु छूटै नांहि ॥ ७२ ॥

प्रतिमाओं की अपेक्षा श्रावकों के भेद।

षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नव परजंत।
उत्तम दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ७३॥

पांचवें गुणस्थान का काल।

एक कोटि पूरव गनि लीजै, तामें आठ वरष घट कीजै।
यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी, अन्तर मुहूर्त जघन्यदसाकी।

एक पूर्व का प्रमाण।

सत्तरि लाख करोड़मित, छप्पन सहस करोड़ि।

एते वरष मिलाइ करि, पूरब संख्या जोड़ि ॥ ७५ ॥

अन्तर मुहूर्त का मान ।

अन्तरमुहूरत द्वै घड़ी, कछुक घाटि उत्कृष्ट ।
एक समै एकावली, अन्तर मुहूर्त्त कनिष्ट ॥ ७६ ॥

छठे गुणस्थान का वर्णन ।

यह पंचम गुनथान की, रचना कही विचित्र ।
अब छट्ठम गुनथान की, दसा कहूँ सुन मित्र ॥७७॥

छठे गुणस्थानका स्वरूप ।

पंच प्रमाद दशा धरे, अट्ठाइस गुनवान ।
थविरकल्प जिनकल्पजुत, है प्रमत्त गुनथान ॥७८॥

पांच प्रमादों के नाम ।

धरमराग विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय ।
पंच प्रमाद दसासहित, परमादी मुनिराय ॥ ७९ ॥

साधु के अट्ठाईस मूल गुण ।

पंच महाव्रत पाले पंच समिति संभाले, पंच इंद्रि जीति भया भोगी चित चैनको । षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधे, प्रासुक धरा में एक आसन है सैनको । मंजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पै सुगंध स्वास वैनको ॥ ठाड़ो करसे अहार लघुभुंजी एकवार, अठाइस मूलगुनधारी जती जैनको ॥ ८० ॥

पंच अणुव्रत और पंच महाव्रत का स्वरूप।

हिंसा मृषा अदत्तधन, मैथुन परिगह साज।
किंचित त्यागी अनुव्रती, सबत्यागी मुनिराज ॥८१॥

पंच समितिका स्वरूप।

चले निरखि भाषे उचित, भखे अदोष अहार।
लेइ निरखि डारे निरखि, समिति पंच परकार ॥८२॥

छै आवश्यक।

समता वंदन थुतिकरन, पडिकौना सज्झाउ।
काउसग्ग मुद्राधरन, ए षडावसिक भाउ ॥ ८३ ॥

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधुओंका स्वरूप।

थविरकलपि जिनकलपि दुविधिमुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत हैं। दोउ अठाईस मूलगुनके धरैया दोउ, सरव त्यागी व्है विरागता गहत हैं॥ थविरकलपिते जिन्ह के शिष्य साखा होइ, बैठके सभामें धर्म-देसना कहत हैं। एकाकी सहज जिन-कलपि तपस्वी घोर, उदकी मरोरसों परिसह सहत हैं॥ ८४ ॥

वेदनीय कर्म जनित ग्यारह परीषह।

ग्रीषममें धपथित शीत में अकंपचित, भूखे धरधीर प्यासे नीर न चहतु है। डंसमसकादिसों न डरें भूमि सैन करें, वध बंध विथामें अडोल व्है रहतु है॥ चर्या दुख

औरु तिन फाससों न थरहरे, मल दुर्गन्ध की गिलानि न गहतु है । रोगनको न करे इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ए परीसह सहतु है ॥ ८५ ॥

चारित्रमोहजनित सात परीषह ।

एते संकट मुनि सहे, चारित मोह उदोत ।
लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंबर होत ॥
नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे ।
त्रियसनमुख दग रोकि, मानअपमान न वेवे ॥
थिर व्है निर्भर रहे, सहे कुवचन जग जेते ।
भिक्षुक पद संग्रहै, लहै मुनि संकट एते ॥ ८६ ॥

ज्ञानावरणीयजनित दो परीषह ।

अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उतकरष विलोइ ।
ज्ञानावरन उदोत मुनि, सहै परीसह दोइ ॥८७॥

दर्शनमोहनीय जनित और अन्तराय जनितपरीषह ।

सहे अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत ।
रोके उमग अलाभ की, अन्तराय के होत ॥८८॥

बाईस परीषहों का वर्णन ।

एकादश वेदनीकी चारितमोहकी सात, ज्ञानावरनीकी दोइ एक अन्तरायकी । दर्सन मोहकी एक द्वाविंसति बाधा सबै कोई मनसाकी केइ वाकी केइ काय की । काहूको

अलप काहूकों वहोत उनीस ठांई, एक ही समय में, उदै आवे असहाय की। चर्याथित सज्जामांहि एक सीत उष्न- मांहि, एक दाइ होइ तीनि नांही समुदाय की ॥८६॥

स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु की तुलना !

नाना विधि संकट दशा, सहि साधे शिवपन्थ।
थविरकल्प जिनकल्पधर, दोऊ सम निगरन्थ ॥९०॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्पि सो जानि।
एकाकी जाकी दशा, सो जिनकल्प वखानि ॥९१॥

थविरकल्पधर कछुक सरागो, जिनकल्पी महान वैरागी।
इति प्रमत्त गुनथानक धरनी, पूरन भई जथारथ वरनी ॥९२॥

सप्तम गुणस्थान का वर्णन ।

अब वरनो सत्तम विसरामा, अप्रमत्त गुनथानक नामा।
जहां प्रमाद क्रिया विधिनासे, धर्मध्यान थिरता परगासे ९३

प्रथम करनचारित्रको, जासु अन्त पद होइ।
जहां अहारविहार नहिं, अप्रमत है सोइ ॥९४॥

अष्टम गुणस्थान का वर्णन ।

अब वरनो अष्टम गुनथाना, नाम अपूरवकरन बखाना।
कछुकमोहउपसमकरि राखे, अथवा किंचितछयकरि नाखे ९५
जे परिनाम भये नहिं कबहीं, तिन्हको उदै देखिये जबहीं।
तब अष्टम गुनथानक होई, चारितकरन दूसरो सोई ॥९६॥

नवमे गुणस्थान का वर्णन।

अब अनवृत्तिकरन सुन भाई, जहां भाव थिरता अधिकाई।
पूरवभाव चलाचल जेते, सहजअडोल भये सब तेते॥९७॥
जहां न भाव उलटि अधि आवे, सो नवमोगुनथान कहावे।
चारितमोह जहां बहु छीजा, सोहै चरन करनपद तीजा॥

दशवें गुणस्थान का कथन।

कहों दशमगुनथान दुसाखा, जहांसूच्छमशिवकी अभिलाषा।
सूच्छमलोभदशा जहां लहिये, सूच्छमसंपरायसो कहिये॥९९॥

ग्यारहवें गुणस्थान का वर्णन।

अब उपसंतमोह गुनथाना, कहों तासु प्रभुता परवाना।
जहां मोह उपसमे न भासे, जथाख्यातचारित परगासे १००

जाहि परस के जीव गिरि परें करें गुन रद्द।
सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद्द॥१०१॥

बारहवें गुणस्थान का वर्णन। चौपाई।

केवलज्ञान निकट जहं आवे, तहां जीव सब मोह खिपावे।
प्रगटे यथाख्यात परधाना, सो द्वादशम छीनगुनथाना १०२

उपशम श्रेणीकी अपेक्षा गुणस्थान का काल। दोहा।

षट सप्तम अष्टम नवम, दश एकादश बार।
अँतरमुहूरत एक वा, एकसमै थितधार॥१०३॥

तेरहवें गुणस्थान का वर्णन।

छीनमोह पूरन भयो, करि चूरन चित चाल।

अब सजोग गुनथान की, वरनों दशा रसाल ॥१०४॥

तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

जाकी दुःखदाता घाती चौकरी विनस गई, चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है। प्रगट भयो अनंत दंसन अनंत ज्ञान, बीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है॥ जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति अस्सी,एक्यासी चोरासी वा पचासी परवान है। सो है जिनकेवली जगतवासी भगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुनथान है॥१०५॥

केवलज्ञानी की मुद्रा और स्थिति।

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु का-उसग्ग मुद्रा थिरपाल है। खेत सपरस कर्म प्रकृति के उदे आए, विना डग भरे अन्तरिच्छ जाकी चाल है॥ जाकी थिति पूरव करोड़ि आठ वर्ष घाट, अन्तरमुहूरत जघन्य जग-जाल है। सो है देव अठारह दूषन-रहित ताकों, बनारसी कहे मेरी बंदना त्रिकाल है॥ १०६ ॥

केवली भगवान को अठारह दोष नहीं होते। कुण्डलिया

दूषन अट्ठारह रहित, सो केवलि संजोग। जनम मरण जाके नहीं, नहिं निद्रा भय रोग॥ नहिं निद्रा भय रोग, सोग विस्मय न मोहमति। जराखेद परस्वेद, नांहि मद वैर विषै रति॥ चिंता नाहि सनेह, नाहिं जहं प्यास न

भख न। थिर समाधि सुख सहित रहित अट्ठारह दूषन ॥

केवलज्ञानी प्रभुके परमौदारिक शरीर का अतिशय। कुंडलिया।

वानी जहां निरक्षरी, सप्तधातुमल नांहि। केस रोम नख नहिं बढ़े, परम उदारिक मांहि ॥ परम उदारिक मांहि जांहि इंद्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि। लोकालोक प्रकास, करन केवल रजधानी, सो तेरमगुनथान जहां अतिशयमय वानी १०८

चौदहवें गुणस्थान का वर्णन। दोहा।

यह सजोग गुनथान की, रचना कही अनूप।
अब अयोगकेवल दशा, कहौं यथारथ रूप ॥१०९॥

चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप। सवैया इकतीसा।

जहां काहू जीव कौं असाता उदै साता नांहि, काहू कौं असाता नांहि साता उदै पाइये। मन वच कायसौं अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये ॥ जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जोगी जिन की सी, अन्तकाल द्वै समै में सकल खिपाइये। जाकी थिति पंच-लघु अक्षर प्रवान सोइ, चौदहौं अयोगी गुनथान ठह-राइये ॥११०॥

बंध का मूल आस्रव और मोक्ष का संवर है।

चौदह गुनथानक दशा, जगवासी जिय भूल।

आस्त्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्ष के मूल ।।१११।।

संवर को नमस्कार ।

आस्त्रव संवर परनति जौलौं, जगतनिवासि चेतना तौलौं ।
आस्त्रव संवरविधि विवहारा, दोऊ भवपथ शिवपथधारा ।।
आस्त्रवरूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोखपद दाता ।
जा संवरसों आस्त्रव छीजे, ताकोंनमस्कार अब कीजे११३

ग्रन्थ के अन्त में संवर स्वरूप ज्ञान को नमस्कार ।

जगत के प्रानी जीत व्है रह्यो गुमानी ऐसो, आस्त्रव असुर दुःखदानी महाभीम है । ताकौ परताप खंडिवेकों परगट भयो, धर्म को धरैया कर्म रोगको हकीम है ।। जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागर की सीम है । संवर को रूपधरे साधे शिवराह ऐसो ज्ञानी पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ।। ११४ ।।

इति गुणस्थानाधिकार समाप्त ।

अन्तिम प्रशस्ति

भयो ग्रन्थ संपूरन भाषा, बरनी गुनथानककी साखा ।
बरनन और कहांलों कहिये, जथासकति कहिचुप व्है रहिये।।
लहिए और न ग्रंथउदधिका, ज्योंज्योंकहिये त्योंत्यों अधिका ।
ताते नाटक अगम अपारा, अलपकवीसुरकी मतिधारा ।।२।।

दोहा।

समयसार नाटक अकथ, कवि की मतिलघु होइ।
तातें कहत बनारसी, पूरन कथै न कोइ॥ ३॥

ग्रन्थ महिमा।

जैसे कोउ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते किहि भांति चक्री कटक सों लरनो। जैसे कोउ परवीन तारू भुज भारू नर, तैरे कैसे स्वयंभूरमन सिंधु तरनो॥ जैसे कोउ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे कैसे कारज विधाता कौ सो करनो। तैसे तुच्छमती मोरी तामें कविकला थोरी, नाटक अपार में कहां लों याहि वरनो॥ ४॥

जीव नट की महिमा।

जैसे वटवृक्ष एक तामें फल हैं अनेक, फल फल बहु बीज बीज बीज वट है। वटमांहि फल फल मांहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है॥ तैसे एक सत्तामें अनंत गुण पर्जाय पर्जय में अनंत नृत्य तामें ऽनंत ठट है। ठट में अनंत कला कला में अनंत रूप, रूप में अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है॥ ५॥

दोहा।

ब्रह्म ज्ञान आकाश में, उड़े सुमति खग होइ।
जथासकति उद्दिम करे, पार न पावे कोइ॥ ६॥

चौपाई ।

ब्रह्म ज्ञान नभ अंत न पावे, सुमति परोक्ष कहालों धावे ।
जिहिविधिसमयसार जिनिकीनो, तिन्हके नामधरे अब तीनों ॥

अथ कवियों के नाम ।

कुन्दकुन्दाचारज प्रथम गाथाबद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है । ताही के परंपरा अमृतचन्द भये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो है ॥ प्रगट्यो बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये हैं कवित्त हिये बोध बीज वयो है । शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहि को भयो है ॥ ८ ॥

सुकवि-लक्षण ।

अब कछु कहूं यथारथ वानी, सुकवि कुकविकी कथा कहानी
प्रथम सुकवी कहावै सोई, परमारथ रस बरने जोई ॥ ९ ॥
कलपित बात हिए नहि आने, गुरुपरंपरा रीति वखाने ।
सत्यारथ सैली नहि छंडे, मृषावादसों प्रीति न मंडे ॥१०॥

दोहा ।

छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान ।
जो इहि विधि रचना रचे, सोहै सुकवि सुजान ॥११॥

कुकवि लक्षण । चौपाई ।

अब सुन कुकवि कहों है जैसा, अपराधी हिय अंध अनैसा ।

मृषाभाव रस बरनै हित सों, नई उकति उपजावे चितसौं ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आनै, परमारथ-पद भेद न जानै ।
वानी जीव एक करि बूझै, जाकौ चित जड़ ग्रन्थ न सूझै ॥
वानी लीनभयौ जग डोलै, वानी ममता त्यागि न बोलै ।
है अनादि वानी जगमांही, कुकवि बात यह समुझै नांही ॥

वाणी व्याख्या । सवैया इकतीसा ।

जैसे काहू देस में सलिल धारा कारंज को, नदी सों निकसि फिरि नदी में समानी है । नगर में ठौर २ फैलि रही चहुँ ओर, जाके ढिग बहै सोई कहै मेरौ पानी है ॥ त्योंही घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन २ में अनादि ही की वानी है । करम कलोल सों उसास की बयारि बाजै, तासों कहै मेरी धुनि ऐसो मूढ प्राणी है ॥१५॥

दोहा ।

ऐसे मूढ़ कुकवि कुधी, गहै मृषामग दौर ।
रहै मगन अभिमान में, कहै और की और ॥१६॥
वस्तु सरूप लखै नहीं, बाहिज दृष्टि प्रवान ।
मृषा विलास विलोकि कै, करै मृषा गुनगान ॥१७॥

मृषा गुणगान कथन । सवैया इकतीसा ।

मांस की गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं, कहैं मुख चन्द जो सलेषमा को घरु है । हाड़ के दसन आहि हीरा

मोती कहैं ताहि, मांस के अधर ओंठ कहैं विंबफरु है ॥
हाड़ दंड भुजा कहैं कौलनाल कामधुजा, हाड़ ही के थंभा
जंघा कहैं रंभातरु है। यों ही झूठी जुगत बनावें औ
कहावें कवि, एते पर कहैं हमैं सारदा कौ वरु है ॥ १८ ॥

चौपाई।

मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी, मिथ्या तिनकी भाषित वानी।
मिथ्यामती सुकवि जो होई, वचन प्रवांन करै सबकोई १९

दोहा।

वचन प्रवान करै सुकवि, पुरुष हिये परवान।
दोऊ अंग प्रवान जो, सो है सहज सुजान ॥२०॥

समयसार नाटक की व्यवस्था। चौपाई।

अब यह बात कहूँ है जैसे, नाटक भाषा भयो सु ऐसे।
कुन्दकुन्दमुनि मूल उधरता, अमृतचन्द्र टीकाके करता॥
समैसारनाटक सुखदानी, टीका सहित संस्कृत वानी।
पंडित पढ़ै सु दिढ़मति बूझै, अलपमती कों अरथ न सूझै॥
पांडे राजमल्ल जिनधर्मी, समैसार नाटक के मर्मी।
तिन गरंथ की टीका कीनी, बालबोध सुगम कर दीनी॥
इहिविधि बोध वचनिका फैली, समै पाय अध्यातम सैली।
प्रगटी जगमांही जिनवानी, घर २ नाटक कथा वखानी॥

चौपाई

नगर आगरे मांहि विख्याता, कारन पाइ भय बहु ज्ञाता ।
पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने,निसिदिन ज्ञानकथा रसभीने ॥

दोहा

रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगौतीदास नर,कौंरपाल गुनधाम ॥२६॥
धर्मदास ये पंचजन, मिलि बैठैं इक ठौर ।
परमारथ चरचा करैं, इनके कथा न और ॥२७॥
कबहूं नाटक रस सुनैं, कबहूं और सिद्धन्त ।
कबहूँ बिङ्ग बनाइकै, कहै बोध बिरतंत ॥२८॥
चित कौरा करि धरमधर, सुमति भगौतीदास ।
चतुरभाव थिरता भए, रूपचंद परगास ॥२९॥

चौपाई ।

जहां तहां जिनवानी फैली, लखै न सो जाकी मति मैली ।
जाके सहज बोध उपजाना, सो ततकाल लखै यह बाता ॥

दोहा ।

घट २ अंतर जिन बसै, घट २ अंतर जैन ।
मति-मदिरा के पानसों, मतवाला समुझै न ॥३१॥

चौपाई ।

बहुत बड़ाई कहांलों कीजे, कारिज रूप बात कहि लीजे ।
नगर आगरे मांहि विख्याता, बानारसी नाम लघु ज्ञाता ॥
तामें कवितकला चतुराई, कृपा करें यह पांचों भाई ।
पंच प्रपंचरहित हिय खोले, ते बानारसीसों हंसि बोले ॥
नाटक समयसार हित जीका, सुगम रूप राजमली टीका ।
कवित्तबद्ध रचना जो होई, भाषाग्रंथ पढ़े सब कोई ॥३४॥
तब बनारसी मनमहिं आनी, कीजै तौ प्रगटे जिनवानी ।
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी, कवितबद्ध की रचना कीनी ३५
सारहसौ तिरानवे बीते, आसौ मास सित पच्छ बितीते ।
तिथि तेरस रविवार प्रवीना, ता दिन ग्रन्थ समापत कीना ॥

दोहा ।

सुख-निधान सक बंध नर, साहिब साह किरान ।
सहस-साह सिर मुकुट-मनि, साहजहां सुलतान ॥३७॥
जाके राज सुचैनसों, कीनों आगम सार ।
ईति भीति व्यापी नहीं, उनकौ यह उपगार ॥ ३८ ॥

ग्रन्थ के सब पद्यों की संख्या । सवैया इकतीसा ।

तीनसै दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ, युगलसै पैंतालीस इकतीसा आने हैं । छयासी चौपाई, सैंतीस तेइसे सवैये, बीस छप्पै अठारह कवित्त बखाने हैं ॥ सात पुनि

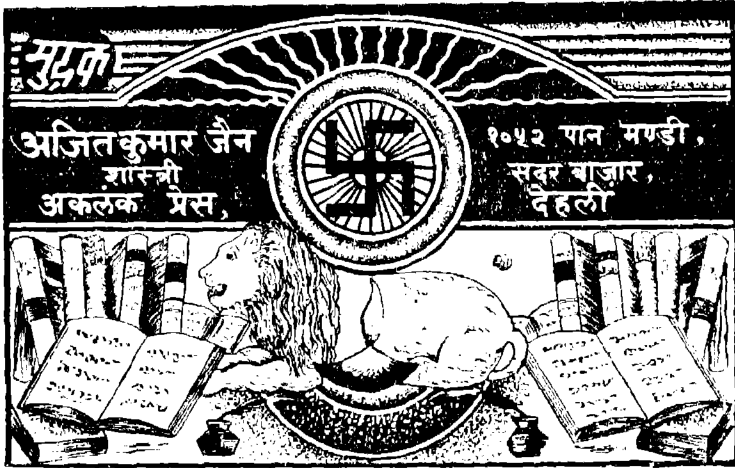
ही अडिल्ल, चारि कुंडलिए मिलि सकल सात सै सत्ता-
इस ठीक ठानै हैं। बत्तीस अच्छर के सिलोक कीने लेखै,
ग्रंथ-संख्या सत्रह सै सात अधिकाने हैं ॥ ३९ ॥

दोहा ।

समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत ।
सोहै आगम नाम में, परमारथ विरतंत ॥ ४० ॥

—०—

समाप्त ।


मुद्रक
अजितकुमार जैन
शास्त्री
अकलंक प्रेस,
१०५२ पान मण्डी,
सदर बाज़ार,
देहली